

श्रीरामेश्वरो विजयतेतराम्

नित्यानुष्ठानविधिः

एवं

शाङ्करभाष्ययुतं श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्



शेषशायी श्रीलक्ष्मी–नारायण

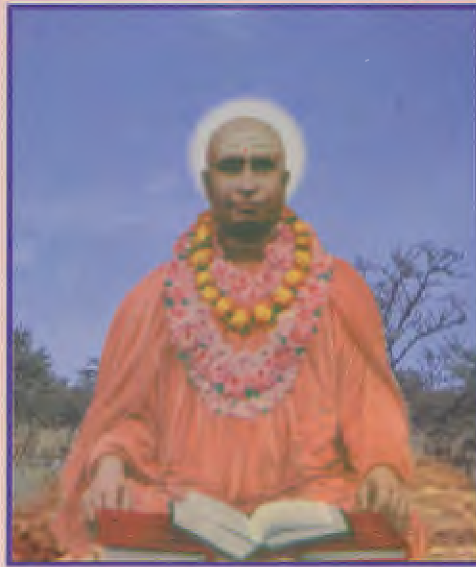


कैलास विद्या प्रकाशन

कैलास आश्रम–ऋषिकेश (उत्तरांचल)



जगद्गुरु भगवान् आदि शंकराचार्य भगवत्पाद



श्री अष्टमकैलासपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर
अनन्त श्री स्वामी चैतन्य गिरि (शास्त्री जी) महाराज



"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

श्रीकैलासविद्यालोकस्य सप्तसप्तितमः (७७वाँ) सोपानः

नित्यानुष्ठानविधिः
एवं
शाङ्करभाष्ययुतं श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

निर्देशक

यतीन्द्रकुलतिलक श्रीदशमकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श
आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्दगिरि जी महाराज
वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य



सम्पादक :

स्वर्ण लाल तुली

बी.इ.,डी.डी.इ. (न्यूज़ीलैण्ड)

प्रकाशक :—

श्री कैलासविद्या प्रकाशन

कैलास आश्रम, कैलास गेट, ऋषिकेश-२४९२०१

द्वारा कैलास विद्यातीर्थ, आदिशंकराचार्य स्मारक,

६ भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष : ३३४७४७५

Website : www.kailasashram.com

सौजन्य **:- श्री कैलास आश्रम, रोहतक (हरियाणा)**

प्रथमावृत्ति : २,००० - वि. सं. २०५८ - सन् २००१ ई.

मूल्य : ५० रुपये

पुस्तक प्राप्ति स्थान:-

१. **कैलास विद्या केन्द्रीय समिति,** ६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१

२. **श्रीकैलास आश्रम, कैलास गेट,** मुनि की रेती, ऋषिकेश—२४९२०१,
   दूरभाष- ०१३५-४३०५९८

३. **ब्रह्मानन्द आश्रम,** मुनि की रेती, ऋषिकेश—२४९२०१,

४. **श्री दशनाम संन्यास आश्रम,** भूपतवाला, हरिद्वार—२४९४०१, दूरभाष- ०१३३-४६१७०६

५. **श्री कैलास आश्रम,** उजेली, उत्तरकाशी-२४९१९३, दूरभाष- ०१३७४-२२३६१

६. **श्री कैलासधाम,** नई झूंसी (प्रयागराज)-२२१५०६, दूरभाष- ०५३२-६६८७१८

७. **श्री शंकर ब्रह्मविद्याकुटीर,** ८३-ए, द्वारका पुरी, मुजफ्फर नगर-२५१००१

८. **चैतन्य सत्संग भवन,** १३/३६१ गोविन्द नगर, कानपुर-६

९. **श्री राम आश्रम,** समानामण्डी, पटियाला-१४७१०१, दूरभाष- ०१७६४-२०४५०

१०. **श्री कैलासविद्यातीर्थ (आदिशंकराचार्य स्मारक)**
   ६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष- ०११-३३४७४७५

११. **श्री कैलास आश्रम,** मॉडल टाऊन, रोहतक-१२४००१

१२. **श्री कैलास विद्यातीर्थ,** गिरियक रोड, राजगीर (नालन्दा)-८०३११६, दूर.- ०६११२-५५२८३

१३. **श्री कैलास विद्याधाम,** रूप नगर, जम्मू तवी-१८०००१

१४. **नर्मदा सत्संग आश्रम,** भिलाड़िया घाट, होशंगाबाद (म.प्र.)

मुद्रक:— **नाथ प्रिंटर्ज,** नई दिल्ली, दूरभाष - ३५५५५८९, ३६१९१७०

विषयानुक्रमणिका

ॐ

शांकरभाष्ययुतं श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

विश्रामनिर्देशिका

विश्राम संख्या	श्लोक संख्या	नामांक (कुल)	पृष्ठांक
१	१४	९	७८
२	४०	२४६ (२५५)	९९
३	७०	२८२ (५३७)	१२०
४	१००	२७९ (८१६)	१४०
५	१४२	१८४ (१०००)	१६३

✲✲✲✲✲

आह्निकनिर्देशिका

आह्निक संख्या	श्लोक संख्या	नामांक (कुल)	पृष्ठांक
१	१३	–	६७
२	२१	७३	८६
३	४२	२०१ (२७४)	१०१
४	६४	२११ (४८५)	११६
५	८७	२१३ (६९८)	१३१
६	१०८	१९७ (८९५)	१४६
७	१४२	१०५ (१०००)	१६३

ॐ

प्राक्कथन

सम्पूर्ण विश्व में आध्यात्मिकता की दृष्टि से भारत अग्रगण्य है। भारत की पवित्र भूमि पर परमात्मा की अज्ञात सत्ता किसी न किसी रूप में अवतरित होती रही है। तथा यहाँ स्थूल पर सूक्ष्म की, ससीम पर असीम की, जड़ पर चेतन की तथा भौतिकता पर दिव्यता की विजय होती रही है।

आज से १२१४ वर्ष पूर्व भारत के ही एक प्रान्त केरल के अन्तर्गत कालड़ी ग्राम में आशुतोष भगवान् शिव आचार्य शंकर के रूप में अवतरित हुए। उस समय वेद तथा वैदिक धर्मों के निन्दकों का एक बहुत बड़ा तथा शक्तिशाली दल था। ऐसे संक्रमण-काल में भगवान् शंकराचार्य जी ने अपने ज्ञान विज्ञान के बल पर वैदिक धर्म की पताका को पुनः ऊँचा किया एवं सभी कल्याण कामियों को सन्मार्ग का अनुसरण कराया। भारत की चारों दिशाओं में चार मठों का निर्माण कराया जिससे वैदिक सनातन धर्म एवं अध्यात्मविद्या का दृढ़ता से प्रचार होने लगा। भगवान् शंकराचार्य द्वारा स्थापित इन चारों मठों में से केवल शृंगेरीमठ की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चल रही है शेष शारदामठ, ज्योतिर्मठ और गोवर्द्धनमठ की परम्परा विच्छिन्न होती रही है। इनमें से भी सर्वाधिक दयनीय दशा उत्तराखण्डी ज्योतिर्मठ की हुई। ऐसी परिस्थिति में पंजाब की पवित्र भूमि में श्रोत्रिय समृद्ध घर में एक महात्मा का जन्म हुआ जो हिमालय की शुभ्र श्रेणियों में स्थित ऋषियों की तपःस्थली ऋषिकेश में संन्यास ग्रहण करने के बाद स्वामी धनराज गिरि जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऋषिकेस्थ ब्रह्मविद्यापीठ कैलास आश्रम के संस्थापक आचार्य श्रीमत्स्वामी धनराज गिरि जी महाराज ही थे जिन्होंने सन् १८८० ई. में कैलासाश्रम की संस्थापना की। उनके पश्चात् इस पीठ पर क्रमशः नौ आचार्य महामण्डलेश्वर आसीन हुए जो सभी बड़े विद्वान् एवं ब्रह्मनिष्ठ माने जाते हैं। वर्तमान् दशम पीठाचार्य श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज १९६९ ई. से इस पवित्र पीठ की शोभा को चार चाँद लगा रहे हैं। अष्टम आचार्य श्रीमत्स्वामी चैतन्य गिरि जी महाराज थे जिनकी कृपाछाया में आने वाले अनेक सज्जनों एवं माताओं ने अपना जीवन अध्यात्म-साधना की ओर मोड़ा। उन्हीं में श्रीमती माता सुशीला

देवी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी तपश्चर्या और साधना से अनेक सांसारिक मनुष्यों को अध्यात्म की ओर आकर्षित किया।

रोहतक नगरी में श्री माता जी का आगमन सर्वप्रथम १९५३ ई० में हुआ। यहाँ आकर आपने मोह-पाश में फंसे तथा अज्ञान की निद्रा में सोये व्यक्तियों को आध्यात्मिक ज्ञान-ज्योति द्वारा प्रबुद्ध किया।

श्री कैलास आश्रम के अष्टम पीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी चैतन्यगिरि जी (शास्त्री जी) महाराज का रोहतक नगरी में सन् १९५९ ई० में पदार्पण हुआ। उनके आने से पूर्व ही श्री माता जी ने यहाँ सत्संग रूपी ज्ञान-गंगा प्रवाहित कर दी थी। जिसमें सभी भक्तजन प्रेम से गोते लगा रहे थे। श्री माता जी के प्रभु प्रेम तथा भक्ति-भाव को देखते हुए श्री शास्त्री जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा प्रति वर्ष श्री माता जी के तीर्थ तुल्य आवास-स्थल पर आकर प्रेमी-जनों पर ब्रह्मविद्या की अमृत-वर्षा करते। एक बार सहारनापुर में श्री सद्‌गुरुदेव शास्त्री जी महाराज ने श्री माता जी को अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक दोनों भुजाएं उठा कर कहा- "सत्संग करते रहना, सत्संग करते रहना अर्थात् नियमपूर्वक सत्संग सदैव करते रहने का आशीर्वाद प्रदान किया।

परमपूज्य सद्‌गुरुदेव (अष्टम पीठाधीश्वर) जी की ब्रह्मलीनता के पश्चात् कुछ वर्ष तक श्री माता जी ऋषिकेश न जा सकी परन्तु श्री माता जी समय-समय पर गुरुवर, वात्सल्य की मूर्ति, भक्तों के श्रद्धादीप को प्रज्वलित रखने वाले श्री कैलास आश्रम के दशम पीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर परमपूज्य स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज के दर्शनार्थ कुरुक्षेत्र, ग्रेटर कैलास, राजेन्द्र नगर, दिल्ली तथा उत्तर काशी जाते रहे। एक बार पूज्य महाराज से समय लेकर श्री माता जी ने बाल, युवा और वृद्धों की मण्डली को ऋषिकेश और हरिद्वार ले जाकर उपनयन-संस्कार से सम्पन्न कराया और वहाँ महाराज श्री को रोहतक आने की करबद्ध प्रार्थना की। माता जी के असीम सन्त स्नेह, सद्‌गुरु-निष्ठा एवं परिपूर्ण भक्ति को देखते हुए १९८३ ई० में पूज्य महाराज जी का सन्त मण्डली सहित रोहतक नगर में शुभ पदार्पण हुआ। इस प्रकार निरन्तर दस दिन तक पूज्य महाराज जी द्वारा यहाँ स्वाध्याय एवं प्रवचन का कार्यक्रम चलता रहा। श्री महाराज जी द्वारा वैदिक संस्कारों के पुनरुद्धार उद्‌बोधन की बात सुनकर बहुत से नागरिकों में हिन्दुत्व की भावना जागृत हुई।

इस प्रकार कैलास आश्रम के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं आध्यात्मिक प्रचार की भावना को देखते हुए एक दिन पूज्य महाराज श्री ने अपने प्रवचनों में कहा कि श्री माता जी जहाँ रहकर आध्यत्मिक प्रचार करती हैं वह सच्चे अर्थ में कैलास आश्रम की शाखा है किन्तु वह एक चलती-फिरती शाखा है। नित्य महाराज श्री के इस उद्‌बोधन से नवयुवक भक्तों ने 'चल कैलास आश्रम, मॉडल टाऊन, रोहतक' का एक साइन बोर्ड बनवा लिया। जहाँ भी श्री माता जी रहते वहीं यह बोर्ड लगा दिया जाता।

पूज्य महाराज श्री की १९८४ ई० की द्वितीय यात्रा में नवयुवक उत्साहित हो अचल कैलास आश्रम की चर्चा करने लगे। भगवत्प्रेरणा से पूज्य महाराज श्री के मन में भी यह भाव उत्पन्न हुआ कि रोहतक में अचल कैलास आश्रम बन जाए तो यहाँ के लोगों को वैदिक सनातन धर्म एवं शांकरी ब्रह्मविद्या की प्रेरणा निरन्तर मिलती रहेगी। फलतः आशुतोष भगवान् शंकर की कृपा से आश्रम के लिए भूमि-क्रय की गई और पूज्य महाराज जी के संकेतानुसार सन् १९८५ में शिलान्यास समारोह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात परम पूज्य महाराज श्री की आज्ञानुसार पूज्या माता जी का १० फरवरी १९८९ को वसन्त पंचमी, वागीश्वरी जयन्ती के शुभ दिन पर इस आश्रम में पदार्पण हुआ। अब आश्रम में ही प्रतिदिन प्रातःकाल से सायंकाल तक सन्ध्यावंदन, भजन, कीर्तन, स्वाध्याय तथा सत्संग का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। प्रतिवर्ष की भाँति मार्च १९८९ में परम पूज्य श्री महाराज जी का श्री कैलास आश्रम में पदार्पण हुआ और पूज्य महाराज श्री ने ज्ञान-नेत्र शिविर नाम प्रदान करते हुए प्रतिवर्ष यह ज्ञान-नेत्र-शिविर लगा कर अद्यावधि भक्तों को ज्ञान रूप नेत्र प्रदान करने की कृपा की।

१९९५ में श्री कैलास आश्रम रोहतक का देव प्रतिष्ठा महोत्सव हरिहरात्मक महायज्ञ एवं विराट सन्त सम्मेलन तथा इस अवसर पर तीन पुस्तकों के विमोचन द्वारा सम्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् श्री कैलास आश्रम रोहतक में प्रतिवर्ष श्री महाराज जी की अध्यक्षता में इस वार्षिक महोत्सव को कई मांगलिक कार्यक्रमों तथा सन्तों के प्रवचनों द्वारा बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

२५ दिसम्बर सन् १९९८ ई० पौष शु. ७ को श्री महाराज जी ने पूज्या माता जी को गेरुआ वस्त्र प्रदान कर माता जी को स्वामी श्री जीवन्मुक्त गिरि (गिरि माँ) नाम दिया। तदनन्तर वैशाख पूर्णमासी को हरिद्वार गंगा तट पर विधिवत् संन्यास दीक्षा दी गई जो कि एक अपूर्व महोत्सव था। पूज्य गिरिमाँ जी के नाम पर श्री कैलास आश्रम रोहतक में नवनिर्मित यज्ञमण्डप का नाम भी पूज्य महाराज श्री ने जीवन्मुक्त यज्ञमण्डप रखा है। इस दिव्य अलौकिक कैलास आश्रम रोहतक में नित्य प्रति प्रातः से सायं तक सन्ध्या-उपासना निरन्तर चलती रहती है।

जीवन में सन्ध्योपासना का अपूर्व महत्त्व है; नियमपूर्वक जो लोग प्रतिदिन सन्ध्या करते हैं; वे पाप रहित होकर सनातन ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः ।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।।

परम श्रद्धेय श्री दशम कैलास पीठाधीश्वर जी महाराज एवं श्री गिरि माँ जी के निर्देशानुसार श्री कैलास आश्रम, रोहतक में प्रातःकाल यतिपूजनमन्त्राः, वेदान्त प्रातः स्मरण स्तोत्र, शिवपूजन, रुद्री पाठ के अनन्तर श्री मद्भागवदगीता, शांकरभाष्य का सामूहिक पारायण किया जाता है; तथा एक अन्य ग्रन्थ का भी विचार किया जाता है। यहाँ प्रतिदिन सायं ४.३० बजे श्री योगवसिष्ठ एवं अन्य पुस्तकों पर भी विचार होता है। मंगलवार- सुन्दरकाण्ड तथा बृहस्पतिवार भगवन्नाम संकीर्तन होता है। सांयकाल श्री शिवमहिम्नस्तोत्रम् के अनन्तर रुद्राष्टकम्, श्री हनुमान चालीसा, संकटमोचन हनुमानाष्टक श्री रामस्तुति, श्री सद्गुरुदेव स्तुति, श्री तोटकाष्टकम् इत्यादि का पाठ होता है। सायंकालीन सन्ध्या के अनन्तर रात्रि में श्रीमद्भगवद्गीता गूढ़ार्थ दीपिका का भी भाई बैठकर विचार करते हैं। इन सब स्तुतियों का संकलन एक ही पुस्तक में किया जाए; ऐसा आदेश छटे वार्षिक देव-प्रतिष्ठा महोत्सव प्रसंग पर पूज्य महाराज श्री ने दिया। जिसको अविलम्ब पूर्ण करना श्री गिरि माँ जी ने अपना परम कर्त्तव्य समझा तथा अति शीघ्र ही यह लघु पुस्तिका बनवा कर तैयार करवाई है, इससे सभी पाठक अति लाभान्वित होंगे एवं परम सुख का अनुभव करेंगे।

इस पुस्तक को सभी के लिए उपादेय बनाने के लिए पूज्य महाराज श्री

की आज्ञानुसार श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा उस पर भगवान् आदिशंकराचार्य के भाष्य को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। इससे श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य पारायण में भी सौविध्य प्राप्त होगा। भाष्य सहित पारायण के उपयोगी बनाने के लिये विनियोग विधि भी इसमें जोड़ दी गई जो शांकरभाष्य संवलित विष्णुसहस्रनाम के अन्य प्रकाशनो में दृष्टिगोचर नहीं होती है, अतः विष्णुसहस्रनाम भाष्य के पारायण करने वाले पाठकों के लिए यह प्रकाशन अत्यन्त उपयोगी होगा। महाराज श्री ने श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य को पाँच विश्रामों एवं सात आह्निकों में विभक्त किया है। पाठक अपनी रुचि के अनुसार पाँच दिनों में अथवा साप्ताहिक पारायण कर सकते हैं। इसके श्लोकों की संख्या को अंग्रेजी अङ्कों द्वारा एवं भगवान् के नामों की संख्या को हिन्दी अङ्कों द्वारा उद्धृत किया है। हमें विश्वास है कि महाराज श्री के आवाहन पर श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य पारायण की तरह श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकर भाष्य पारायण को भी अपना कर भगवान् आदि शंकराचार्य के कृपा भाजन सभी बनेंगे।

'श्रीमहाराजप्रशस्तिः' शीर्षक से संस्कृत में श्लोकबद्ध स्तुति, जिसके रचयिता डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, अध्यक्ष वेदान्त विभाग सम्पूर्णानन्द सं. वि. वि., वाराणसी हैं, भी इस ग्रंथ में अवश्य द्रष्टव्य है।

हरि ॐ तत्सत्।

वैशाख पूर्णमासी वि.सं. २०५८

गुरुपादानुरागी—

स्वर्ण लाल तुली

'विद्यासदन'

४५ गुजराँवाला टाऊन, भाग-२

दिल्ली-११०००९

हरि: ॐ

श्रीमहाराजप्रशस्ति:

डॉ० पारसनाथ द्विवेदी

आचार्योऽध्यक्षश्च वेदान्तविभागस्य संपूर्णानन्द सं. वि. वि. वाराणसी

ब्रह्मात्मैक्यपरा विशुद्धविभवा प्रज्ञा प्रकृष्टा दृढा
श्रौतस्मार्तसनातनर्षिचरित: पन्था: शुभो निर्मल:।
वाणी वर्षति शास्त्रसारममृतं दैवी शिवा संयता
विद्यानन्दयतेर्जगद्गुरुवरस्यानन्दमूर्ते: सदा।१।

स्वाध्यायादिरत: स्वभावसरल: स्वाचारवान् श्रोत्रिय:
आत्मारामसमुनि: समस्तनिगमाम्भोधिं प्रमथ्योद्धृतम्।
पीयूषं वचनै: प्रबन्धनिचयै: लोकान् प्रतप्तान् भवे
वागीश: परिपाययत्यविरतं कारुण्यवारां निधि:।२।

विद्याविक्रमभूविहारपटनाप्रान्ते समुच्चे कुले
तेजोराशिरिवोदितो भवभयाविद्यातमो ध्वंसयन्।
दिव्यै: प्राज्ञकरै: समस्तवसुधां प्राकाशयन् वर्तते
विद्यानन्दगिरिर्गिरां सुमनसां विद्वान् सदा राजते।३।

आचार्याद्विधिना परापरसमां विद्यामवाप्याशु य:
संन्यासं परमार्थसाधकमहं भोगेष्वसक्त: परम्।
वृण्वन् योगबलेन लब्धधिषण: श्रीशांकरे सम्मते
अद्वैते परिनिष्ठित: श्रुतिशिखासिद्धान्तभूतात्मनि।४।

महाद्वैताचार्या: सगुणपरमात्मन्यपि रता:
विरक्ता भोगेभ्य: श्रवण-मननादि-व्यसनिन:।
कृतात्मानो वर्णाश्रमविहितकर्मापि दधत:
इमे विद्यानन्दा विततयशसो मौलिमणय:।५।

पदे वाक्ये तर्केऽप्रतिहतगतिस्ताक्ष्‍र्य इव सत्
स्वपक्षप्राबल्याद्विजितनिखिल-द्वैतिविगण:।
अदूष्यै वैदुष्यै: सदसि विदुषामुर्जितयशा:
सदा विद्यानन्दो गिरिगुरुमहामण्डलपति:।६।

अनन्तश्रीभूषो यतिवरमहामण्डलपति:
समाराध्य: सद्भि: निजचरणसेवानुनिरतै:।
जनानां स्वैर्वाक्यैस्त्रिविधपरितापान् प्रशमयन्
महाचार्य: श्रीशानुपम-पदकंजे धृतमना:।७।

अनासक्तो लोके मधुकरसमश्चम्पकवने
स्थितप्रज्ञो प्रज्ञारथमधिगतः संसृतिगतेः।
परं पारं प्राप्तः सकलभयमुक्तो विजयते
सदा श्रीरामख्यां हृदि परिजपन्नात्मनिरतिः।८।

जपन् पुण्यं नाम विदधदिह यज्ञादिसुकृतं
जनानां सद्बुद्धिं श्रुतिविहितमार्गेषु सततम्।
विरक्तः संसारे भगवति परस्मिन् सुनिरतः
महाराजः श्रीमान्नधियतिसमाजं विजयते।९।

अगाधसारस्वततोयदुर्गमं तरंगमालाकुलितं दुरासदम्।
तथापि शान्तं परिदृश्यते महासमुद्रकल्पं प्रणमन्ति सज्जनाः।१०।

पदादिशास्त्रेषु तलान्तपण्डितः सभासु वक्ता विदुषां महात्मनाम्।
उदारधीधीरमृदुर्मनस्विनां वरो विवस्वानिव भाति भूतले।११।

समुन्नतः साधुसमाजशेखरः सरस्वतीभालमहार्हभूषणः।
समस्तशास्त्राम्बुधिमन्दराचलो जयत्यसौ सज्जनमण्डलेश्वरः।१२।

प्रमाणभूतः श्रुतिसारनिष्ठितः प्रामाणिकग्रन्थनिबन्धकौशलः।
विशुद्धगीर्वाणगिरापतिर्महामना महौजोऽचिंतदिव्यविग्रहः।१३।

सकृच्छ्रुतग्राहि-कुशाग्रधीरयं मनोगतानां सुरवाचि बन्धने।
महापटुः पंक्तिविलापने तथा विनेयबोधे कुशलो विभावनः।१४।

प्रस्थानगूढार्थविदां वरिष्ठः श्रेष्ठः सतां स प्रतिभासमुद्रः।
त्रय्यन्तविद् ज्ञानधनप्रधानः प्रकाशपुंजः सवितेव भाति।१५।

श्रवण-मननयोगैः सर्ववेदान्तशास्त्रादधिगतपरमात्मग्राहिवृत्तिर्महात्मा।
विचरति पथि जीवन्मुक्त एवेह युक्तः श्रुतिविहितसमग्रं कर्म निष्पादयन् सः।१६।

स्मितवदनसरोजं स्नेहकारुण्यपूर्णं नयनयुगलकंज संस्कृता श्रौतवाणी।
व्रजपतिगुणमूर्तिर्यस्य हृत्पुण्डरीके जयति जगति विद्यानन्दगिर्याभिधात्मा।१७।

सदाप्तकामस्य जगच्छ्रिया नु किं परार्थबुद्ध्या विनियोज्यते धनम्।
स्वनिर्मितानेकमठेषु नित्यशः सतां सहस्त्रं परिभुज्यते किल।१८।

गोभिश्च दिव्यैर्विपुलैर्महीसुरैर्विभिन्नशास्त्रेषु नितान्तपण्डितैः।
उपासकैः साधकसिद्धसज्जनैः सुसाधुवर्गैर्महिता मठाः समे।१९।

दानैस्तपोभिर्विविधैश्च यज्ञैरुपासनाभिः श्रवणादिभिश्च।
समाधियोगैर्व्रततीर्थकृत्यैः ब्राह्मी कृतानेन तनुः स्वकीया।२०।

ज्ञानासिना छिन्नसमस्तभेदमेकात्मभूतं प्रियसर्वरूपम्।
धरागतं तं प्रणमन्ति लोकाः तेजोविशेषाश्रयभास्कराभम्।२१।

विद्यानन्दगिरिः समस्तनयविद्वाचस्पतिर्दर्शनेष्वासक्तः
श्रमयत्नशारदबलैर्लब्धाशुसम्यङ्मतिः।
अद्वैतार्थविवेचनं प्रकुरुते सूत्रेऽथ भाष्ये पुनः
प्रौढाचार्यनिबद्धगूढविविधग्रन्थेषु वाग्वैभवः।२२।

व्याख्यानैर्विविधैः सुधारसमयैर्ग्रन्थैः स्वयंनिर्मितैः
भाषायां सुरवाचि सत्प्रवचनैराचारविस्तारणैः।
विद्यानन्दगिरेर्महोपकृतिभिः कल्याणकृद्भिर्वयं
संजाता ऋणिनश्चिरं प्रमुदितास्तं ब्रह्मनिष्ठं स्तुमः।२३।

आयुष्यं लभतां चिरं प्रणिहिता श्रीशारदे सन्मतिः
लोके सर्वशिवाय संभवतु सद् वाग्युक्तियोगः सदा।
आरोग्यं शुभकौशलश्च भगवत्सान्निध्यमानन्दनं
विद्यानन्दगिरेर्गिरः समुदिता दिव्या जयन्तु त्वरम्।२४।

अनेन विद्यादिपदेन शोभिना, सुधावृषा चन्द्रमसेव शोभते।
नभः सभा सत्स्वपि तारकादिषु, बुधादिषु क्षीणतमोऽभिराशिना।२५।

यज्ञेन दानेन तपोधनेन दिगन्तविश्रान्तविशुद्धकीर्त्या।
सदर्थयोगेन विशिष्यतेऽसौ महामनस्वी भुवि देवकल्पः।२६।

प्रस्थानत्रयपाठः

प्रस्थानत्रयपाठस्य पारायणप्रवर्तकः।
विद्यानन्दगिरिर्नूनं वैशिष्ट्यं भजते परम्।२७।

वेदवेदांगशास्त्राणां नित्यपारायणात्फलम्।
निर्दिष्टमक्षयं पुण्यं येन ब्रह्मभिवर्तते।२८।

पारायणं शांकरवाङ्मयस्य नित्यं कृतं संयमतः करोति।
भूयस्त्वमर्थस्य सुखावबोधः पुण्यं महद्दुर्लभमन्यतश्च।२९।

॥ इति ॥

हरि ॐ तत्सत्



श्रीशिवादिदेव पूजन विधि

संकल्प

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते अमुकक्षेत्रे (अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे महाश्मशाने आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे) विक्रमशके बौद्धावतारे षष्ट्यब्दानां मध्ये अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषुग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं (अमुकवर्माऽहम्, अमुकगुप्तोऽहम्) ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य दीर्घायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं समस्तकामना-संसिद्ध्यर्थं इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सकलदुरितोपशमनार्थं तथा अखिलआधि-व्याधिजरापीडामृत्युपरिहारार्थं ममजन्मराशेः सकाशाद्ये केचिद्विरुद्धचतुर्थाष्टमद्वादशस्थानस्थिताः क्रूरग्रहास्तैः संसूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशद्वारा एकादशस्थान-स्थितवच्छुभफलप्राप्त्यर्थं पुत्रपौत्रादिसन्ततेरविच्छिन्नाभिवृद्ध्यर्थं

आदित्यादिनवग्रहानुकूलतासिद्ध्यर्थं आध्यात्मिकआदिदैविक-आधिभौतिकत्रिविधतापोपशमनार्थं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विध-पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं श्रीसाम्बसदाशिवप्रीत्यर्थं अमुकलिङ्गोपरि यथोपचारैः शिवपूजनपूर्वकं दुग्धधारया जलधारया च अमुकसंख्याकब्राह्मणद्वारा सकृद्रुद्रावर्तनेन रुद्रैकादशिन्या वा महारुद्रेण वा अतिरुद्रेण वाऽभिषेकपूर्वकं शिवपूजनं करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य प्रतिमायां पूगीफले वा गौरीगणेशपूजनं कुर्यात्।

ॐ गणानां त्त्वा गणपतिर्ठ० हवामहे प्प्रियाणां त्त्वा प्प्रियपतिर्ठ० हवामहे निधीनां त्त्वा निधिपतिर्ठ० हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम्।।१।।

ॐ अम्बे ऽअम्बिकेऽम्बालिके न मानयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः शुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।।२।।

इति मन्त्राभ्यां गौरीगणेशयोरावाहनं पूजनं च कुर्यात्। ततः श्रीसाम्बसदाशिवस्य ध्यानं कुर्यात्।

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।१।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, ध्यानं समर्पयामि।

आवाहनम्– ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, आवाहनं समर्पयामि। आवाहनार्थे पुष्पं समर्पयामि।

प्राणप्रतिष्ठापनम्– ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। व्विश्वे देवास ऽइह मादयन्तामोँ३ प्रतिष्ठ।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, प्राणप्रतिष्ठापयामि। ततः पादयोः पाद्यं समर्पयामि। हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि। अर्घ्याङ्गमाचमनीयं जलं समर्पयामि।

गन्धोदकस्नानम्– ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, गन्धोदकस्नानं समर्पयामि। गन्धोदकस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। आचमनीयं जलं समर्पयामि।

उद्वर्तनस्नानम्– ॐ अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोम मवतु मदाय रसो ऽअच्युतः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि। उद्वर्तनस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

विजयास्नानम्- ॐ व्विज्ज्यं धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्यो बाणवाँर ऽउत। अनेशन्नस्य या ऽइषव ऽआभुरस्य निषङ्गधिः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, विजयां समर्पयामि। विजयासमर्पणान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

पञ्चामृतस्नानम्- ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि। पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। अथवा पृथक्-पृथक् स्नानं कार्यम्।

पयःस्नानम्- ॐ पयः पृथिव्यां पय ऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, पयःस्नानं समर्पयामि। पयःस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

दधिस्नानम्- ॐ दधि क्राब्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण ऽआयू꣡ꣳषितारिषत्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, दधिस्नानं समर्पयामि। दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

घृतस्नानम्- ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्बस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ व्वक्षि हव्यम्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, घृतस्नानं समर्पयामि। घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

मधुस्नानम्- ॐ मधुव्वाताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवरठ० रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता।।२।। मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमाँ ऽअस्तु सूर्य्यः। माद्ध्वीर्ग्गावो भवन्तु नः।।३।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, मधुस्नानं समर्पयामि मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

शर्करास्नानम्- ॐ अपाꣳ रसमुद्वयसरठ० सूर्य्ये सन्तरठ० समाहितम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं बो गृह्णाम्युत्तममुपयाम-गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णायेष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः शर्करास्नानं समर्पयामि। शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नानम्- ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआश्विनाः। श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

वस्त्रम्- ॐ युवासुवासाः परिवीत ऽआगात्स ऽउ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय ऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, वस्त्रं समर्पयामि। वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

यज्ञोपवीतम्

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।
यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

उपवस्त्रम्

ॐ सुजातो ज्योतिषा सहशर्म्म व्वरूथामासदत्स्वः।
व्वासो ऽअग्ने व्विश्वरूपꣳ संव्ययस्व व्विभावसो।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि।

गन्धः

ॐ त्वां गन्धर्व्वा ऽअखनँस्त्वा मिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा व्विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।

भस्म

ॐ प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
सꣳ सृज्य मातृभिष्ट्वं ज्ज्योतिष्मान् पुनरासदः।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, भस्म समर्पयामि।

अक्षताः

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया ऽअधूषत।

अस्तोषत स्वभानवो व्विप्रा न विष्ठुया मती योजान्विन्द्रते हरी।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्पमाला

ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा ऽइव सजित्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्णवः।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

बिल्वपत्राणि– ॐ नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो व्वर्म्मिणे च व्वरूथिने च नमः श्श्रुताय च श्श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुब्भ्याय चाहनन्याय च।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, बिल्वपत्राणि समर्पयामि।

दुर्वाङ्कुराः

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, दूर्वाङ्कुरान्समर्पयामि।

धत्तूरफलानि

कार्षिरसि समुद्द्रस्य तत्त्वाक्षित्त्या ऽउन्नयामि।
समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, धत्तूरफलानि समर्पयामि।

नानापरिमलद्रव्याणि– ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्यया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान् पुमान् पुमा¦संपरिपातु व्विश्वतः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

सुगन्धिद्रव्यम्

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि।

धूपः– ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तं धूर्व्व तं योऽस्मान् धूर्व्वति तं धूर्व्व यं व्वयं धूर्व्वामः। देवानामसि व्वह्नितमर्ठ० सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीपः– ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योति सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, दीपं दर्शयामि। हस्तौ प्रक्षाल्य।

नैवेद्यम्

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य सुष्मिणः।
प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, नैवेद्यं निवेदयामि। नैवेद्ये बिल्वपत्रं प्रक्षिप्य, ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। आचमनीयं जलं समर्पयामि। मध्ये पानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्पयामि।

करोद्वर्तनार्थे चन्दनम्

ॐ अर्ठ० शुना ते अर्ठ० शुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदायरसोऽअच्युतः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, करोद्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।

ऋतुफलम्- ॐ याः फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वर्ठ० हसः।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, ऋतुफलं समर्पयामि।

सफलताम्बूलम्- ॐ उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्ण्णंन वेरनुवाति प्रगर्धिनः। श्येनस्येव ध्रजतो ऽअङ्कस परि दधिक्राब्णः सहोर्ज्जा तरित्रतः स्वाहा।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, मुखशुद्ध्यर्थं सफलताम्बूलं समर्पयामि।

दक्षिणाद्रव्यम्– ३ँ० हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्विधेम।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

आरार्तिक्यम्– ३ँ० इदर्ठ० हविः प्रजननं मे ऽअस्तु दश वीरर्ठ० सर्व्वगणर्ठ० स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो ऽअस्मासु धत्त।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, कर्पूरार्तिक्यं समर्पयामि।

मन्त्रपुष्पाञ्जलिः– ३ँ० यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

३ँ० राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यम् कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।।

३ँ० स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुषऽआन्तादापरार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया ऽएकराडिति। तदप्येषश्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन्गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्व्विश्वेदेवाः सभासद इति।।

३ँ० व्विश्वतश्चक्षुरुत व्विश्वतोमुखो व्विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽएकः।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

शिवगायत्री– ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।

श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, शिवगायत्रीं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।
तेषा सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

प्रार्थना

भूत्यालेपनभूषितः प्रविलसन्नेत्राग्निदीपाङ्कुरः
कण्ठे पन्नगपुष्पदामसुभगो गङ्गाजलैः पूरितः।
ईषत्ताम्रजटाऽग्रपल्लवयुतो न्यस्तो जगन्मण्डपे
शम्भुर्मङ्गलकुम्भतामुपगतो भूयात्सतां श्रेयसे।।१।।

आत्मा त्वं गिरिजामतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।।२।।
श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः प्रार्थनां समर्पयामि।

क्षमापनम्

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥१॥
आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥२॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर॥३॥

अर्पणम्- अनेनावाहनादिषोडशोपचारैरन्योपचारैश्चयथाज्ञानेन यंथामिलितोपचारद्रव्यैः कृतेन पूजनाख्येन कर्मणा भगवान् श्रीसाम्बसदाशिवदेवताः प्रीयन्तां न मम।

ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः।

इति शिवादिदेवपूजनविधिः।





यति-पूजन-मन्त्राः

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥१॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते ॥२॥

वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम्।
सर्वभूतनिवासोऽस्ति वासुदेव नमोऽस्तुते ॥३॥

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥४॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥५॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥६॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥

कर्पूर गौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि॥९॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥१०॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव-देव॥११॥

हरिॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१२॥

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे॥१३॥

स मे कामान् कामकामाय मह्यम्॥१४॥

कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥१५॥

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥१६॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमि जनयन् देव एकः॥१७॥

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
भक्त्या दत्तानि पूजार्थं गृहाण परमेश्वर॥१८॥



वैदिकदशशान्तिमन्त्राः

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।१।।

(कृष्ण-यजुर्वेद-तैत्ति० १।१।१)

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।२।। *(कृष्ण-यजुर्वेद-तैत्ति० २।१।१)*

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।३।।

(कृष्ण-यजुर्वेद-तैति० १।४।१)

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिव। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊ र्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोऽक्षितः।

इति त्रिशड्.कोर्वेदानुवचनम्।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।४।।

(कृष्ण-यजुर्वेद-तैत्ति० १।१०।१)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।५।।शु.य. ईश.

ॐ आप्यायन्तु ममाड्.गानि वाक् प्राणश्चक्षुःश्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च। सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे अस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।६।।

(सामवेद केन-छान्दोग्य-उपनिषत्)

ॐ वाड्. मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।७।। *ऋग्वेदः*

ॐ भद्रं नो अपिवातय मनः।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।८।। *ऋग्वेदः*

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति

नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।९।।

(अथर्ववेद-प्रश्न-उपनिषत्)

ॐ यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।१०।।

(यजुर्वेद० श्वेताश्वतर-उपनिषत्० ६/१८)

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय कर्तृभ्योवंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः। सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि।

ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च। व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्द-योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।।२।। श्री शंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्। तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरून्सन्ततमानतोऽस्मि।।३।। श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्। नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।४।। शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्। सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।५।। ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने । व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः।।६।।





आद्य श्री शंकराचार्य विरचित
प्रातः स्मरणम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयं ।।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ।।१।।

प्रातर्भजामि मनसावचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेतिनेति वचनैर्निगमा अवोचु
स्तं देवदेव मजमच्युतमाहुरग्र्यम् ।।२।।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगमिव प्रतिभासितं वै ।।३।।



रुद्रीपाठ स्वाध्याय एवं प्रस्थानत्रयी शांकरभाष्य पारायण



नवसंवत अमर सन्देश

— परमपूज्या श्री गिरि माँ

नया वर्ष नई प्रेरणा का प्रणेता तथा सभी अभावों से मुक्त होने का मूल मन्त्र देता है कि भाई जागो, निद्रा को त्यागो। नई भोर में नया उजाला आया है। सन्तों का हृदय मानव व्यथा से अकुला गया है। प्यारे, मोह रूपी निद्रा बहुत दुःख देती है, इससे जग जाओ।

समय थोड़ा है।
काम जरूरी है।
मौका यही है।



सार वस्तु

सार वस्तु भगवान है, सार सकल जहान।
असार वस्तु को हेय कर, सार गहो मतिमान।।

प्रभु चरणों में प्रीति कर, पाओ सकल आनन्द।
सुसमय का सत्कार कर, मेटो द्वैत के फन्द।।

समय बीतता जा रहा, मत कोई भूलो भाई।
इसमें लाहा खाट लो, पूरा यत्न लगाई।।

जगत् जाल सब स्वप्न है, सत्य मत मानो भाई।
मायाजाल के बीच में, सकल रह्या भरमाई।।

देह को मैं मत मानना, यह भारी है पाप।
कारण यही अनिष्ट का, समझ करो यही आप।।

आत्म रूप निश्चय करो, शुद्ध सच्चिदानन्द।
निर्विकार अद्वैत पद, पूरण परमानन्द।।



गुरु चरणों में

गुरु चरणों में रहकर के, महावाक्य का श्रवण करो।
चित्त उसमें देकर के, निज जीवन सफल करो।

गुरु द्वैत मिटाते हैं, निज रूप लखाते हैं
भ्रम भेद मिटाते हैं, उसका तुम मनन करो।
गुरु .... ।।१।।

जग स्वप्न की माया है, क्यों मन भरमाया है
तुम करके विचार यही, भवसागर पार करो।
गुरु .... ।।२।।

छड जग की आस सभी, पाएगा खास तभी
ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या, यह ही विश्वास करो।
गुरु .... ।।३।।

सुख रूप तूं है प्यारे, दुःख रूप यह जग सारा।
दुःख रूप को छोड़ के तुम, सुख रूप में वास करो।
गुरु .... ।।४।।

गुरु मोक्ष के दाता हैं, भव बन्ध छुड़ाते हैं
सब दुःख मिटाते हैं, पुनः पुनः तुम नमन करो
निज रूप लखाते हैं, उसमें तुम रमण करो।
गुरु .... ।।५।।

गुरु चरणों में रह कर के ....।
चित्त उसमें देकर के ....।।





सायंकाल शिवमहिम्न स्त्रोत पाठ के अनन्तर

श्री शिवनामावलि:

ॐ महादेव। शिव। शंकर। शम्भो। उमाकान्त। हर। त्रिपुरारे। मृत्युंजय। वृषभध्वज। शूलिन्। गङ्.गाधर। मृड। मदनारे। हर। शिव। शंकर। गौरीशं। वन्दे गङ्.गाधरमीशम्। रुद्रं पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरीनाथम्। जय शम्भो। जय शम्भो। शिव। गौरी शंकर। जय शम्भो। जय शम्भो। जय शम्भो। शिव गौरी शंकर। जय शम्भो।

रुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपम् ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम् ।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम् ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम् ।।१।।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयम् ।
गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ।।
करालं महाकाल कालं कृपालम् ।
गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ।।२।।

तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरम् ।
मनोभूतकोटिप्रभाश्रीशरीरं ।।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा ।
लसद्भालबालेन्दुकण्ठे भुजंगा ।।३।।

चलत्कुण्डलं भ्रूसुनेत्रं विशालम् ।
प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालम् ।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालम् ।
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।।४।।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम् ।
अखण्डम् अजं भानुकोटिप्रकाशम् ।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम् ।
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ।।५।।

कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी ।
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।।
चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी ।
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।६।।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दम् ।
भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् ।।
न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशम् ।
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम् ।।७।।

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम् ।
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ।।
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम् ।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ।।८।।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ।।
ॐ नमः शिवाय । ॐ नमः शिवाय ।
ॐ नमः शिवाय । ॐ नमः शिवाय ।।



श्री हनुमान चालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि।।
बुद्धि हीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन-कुमार।
बल-बुद्धि-विद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस विकार।।

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर।।
राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा।।
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी।।
कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुण्डल कुंचित केसा।।
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै। कांधे मूँज जनेऊ साजै।।
संकर सुवन केसरी नन्दन। तेज प्रताप महा जग बन्दन।।
बिद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा।।
भीम रूप धरि असुर संहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे।।
लाय सजीवन लखन जियाए। श्रीरघुबीर हरषि उर लाए।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।।
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते।।
तुम्ह उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाए राज पद दीन्हा।।
तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना।।

जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं।।
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते।।
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।
सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना।।
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हांक ते कांपै।।
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै।।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरन्तर हनुमत बीरा।।
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।।
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन्ह के काज सकल तुम साजा।।
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै।।
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा।।
साधु सन्त के तुम रखवारे। असुर निकन्दन राम दुलारे।।
अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा।।
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै।।
अन्त काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जनम हरि भक्त कहाई।।
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई।।
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं।।
यह सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बन्दि महा सुख होई।।
जो यह पढ़े हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा।।
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।।

दोहा

पवन तनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप ।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप ।।



संकटमोचन हनुमानाष्टक

मत्तगयन्द छन्द

बाल समय रबि भक्षि लियो तब, तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।।
ताहि सों त्रास भयो जग को यह, संकट काहु सों जात न टारो।।
देवन आनि करी बिनती तब छाँड़ि दियो रबि कष्ट निवारो।।
को नहिं जानत है जगमें कपि संकटमोचन नाम तिहारो।।१।।

बालि की त्रास कपीस बसै गिरि जात महाप्रभु पंथ निहारो।।
चौंकि महा मुनि साप दियो तब चाहिय कौन बिचार बिचारो।।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु सो तुम दास के सोक निवारो।।
।। को०-२।।

अंगद के सँग लेन गये सिय खोज कपीस यह बैन उचारो।।
जीवत ना बचिहौ हम सो जु बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो।।
हेरि थके तट सिंधु सबे तब लाय सिया-सुधि प्रान उबारो।।
।। को०-२।।

रावन त्रास दई सिय को सब राक्षसि सों कहि सोक निवारो।।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनीचर मारो।।
चाहत सीय असोक सों आगि सु दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो।।
।।को०-४।।

बान लग्यो उर लछिमन के तब प्रान तजे सुत रावन मारो।।
लै गृह वैद्य सुषेन समेत तबै गिरि द्रोन सु बीर उपारो।।
आनि सजीवन हाथ दई तब लछिमन के तुम प्रान उबारो।।
।।को०-५।।

रावन जुद्ध अजान कियो तब नाग कि फाँस सबै सिर डारो।।
श्रीरधुनाथ समेत सबै दल मोह भयो यह संकट भारो।।
आनि खगेस तबै हनुमान जु बंधन काटि सुत्रास निवारो।।
।।को०-६।।

बंधु समेत जबै अहिरावन लै रधुनाध पताल सिधारो।।
देबिहिं पूजि भली बिधि सों बलि देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो।।
जाय सहाय भयो तब ही अहिरावन सैन्य समेत सँहारो।।
।।को०-७।।

काज किये बड़ देवन के तुम बीर महाप्रभु देखि बिचारो।।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो।।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु जो कंछु संकट होय हमारो।।
।।को०-८।।

।। दोहा ।।

लाल देह लाली लसे अरु धरि लाल लँगूर।।
बज्र देह दानव दलन जय-जय जय कपि सूर।।

।। इति संकटमोचन हनुमानाष्टक सम्पूर्ण।।

सम्पुट :

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ, हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ।।
सुनहिं विमुक्त बिरत अरु विषई, लहहिं भगति गति संपति नई।।





श्री काकभुशुण्डि रामायण

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुण्डा। मति अकुण्ठ हरि भगति अखण्डा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयउ। माया मोह सोच सब गयउ॥
करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहं आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥
कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥
अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर वचन तब बोलेउ कागा॥

दोहा

नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज।।
सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु वचन खगेस।।
जेहिके अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस।।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥
अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुःख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोहि। बार-बार बिनवउँ प्रभु तोही॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भयउँ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

दोहा

बाल चरित कहि बिबिध बिधि मन मँह परम उछाह।।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह।।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥
बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बाल्मीकि प्रभु मिलन बखना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥
सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी॥
पुनि रघुपति बहुविधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥

दोहा

कहि बिराध बध जेहिं बिधि देह तजी सरभंग।।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग।।

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई॥
पुनि प्रभु पंचबटी कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥
पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खरदूषन वध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥
दसकन्धर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्री रघुबीर बिरह कछु बरना॥
पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्हीं। बधि कबन्ध सबरिहि गति दीन्हीं॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥

दोहा

प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग।।
कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बरषा सरद अरु राम रोष कपि त्रास।।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भान्ती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥
सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा॥
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥
बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥
आए कपि सब जंह रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥
सेन समेति जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारि निधि तीरा॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥

दोहा

सेतु बान्धि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालि कुमार।।
निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार।।
कुंभकरण घननाद कर बल पौरुष संघार।।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मन्दोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥
सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥
जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥
कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥

दोहा

गयउ मोर सन्देह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।।
भयउ रामपद नेह तव प्रसाद बायस तिलक।।



श्री राम-स्तुति

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणं
नव कंज-लोचन कंज-मुख कर-कंज पद कंजारुणं।

कन्दर्प अगणित अमित छबि नव नील-नीरद सुन्दरम्
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरम्।

भजु दीन बन्धु दिनेश दानव-दैत्य वंश-निकन्दनम्
रघुनन्द आनन्द कन्द कोसल चन्द दशरथ-नन्दनम्।

शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणम्
आजानु भुज शर-चाप धर संग्राम जित खरदूषणम्।

इति वदति तुलसी दास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनम्
मम हृदय कंज-निवास कुरु कामादि खल दल-गंजनम्।

श्री हनुमान जी की आरती

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
जाके बल से गिरिवर काँपे। रोग दोष जाके निकट न झांपे।
अंजनि पुत्र महाबल दाई। संतन के प्रभु सदा सहाई।
दै बीरा रघुनाथ पठाये। लंका जारि सिया सुधि लाये।
लंका सो कोट समुद्र सी खाई। जात पवनसुत बार न लाई।
लंका जारि असुर संहारे। सिया राम जी के काज संवारे।
लक्ष्मन मूर्च्छित पड़े सकारे। आनि सजीवन प्रान उबारे।
पैठि पताल तोरि जमकारे। अहिरावन की भुजा उखारे।
बायें भुजा असुर दल मारे। दाहिने भुजा संतजन तारे।
सुर नर मुनि आरती उतारे। जै जै जै हनुमार उचारें।
कंचर थार कपूर लौ छाई। आरती करत अंजना माई।
जो हनुमान जी की आरती गावै। बसि बैकुंठ परम पद पावै।

आरती कीजै .... ।

तोटकाष्टकम्

१. विदिताखिलशास्त्रसुधाजलधे
महितोपनिषत्कथितार्थनिधे।
हृदये कलये विमलं चरणं
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

२. करुणावरुणालय पालय मां
भवसागरदुःखविदूनहृदम्।
रचयाखिलदर्शनतत्त्वविदं
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

३. भवता जनता सुखिता भविता
निजबोधविचारणचारुमते।
कलयेश्वरजीवविवेकविदं
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

४. भव एव भवानिति मे नितरां
समजायत चेतसि कौतुकिता।
मम वारय मोहमहाजलधिं,
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

५. सुकृतेऽधिकृते बहुधा भवतो
भविता पददर्शनलालसता।
अतिदीनमिमं परिपालय मां
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

६. जगतीमवितुं कलिताकृतयो
विचरन्ति महामहसश्छलतः।

अहिमांशुरिवात्र विभासि गुरो
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

७. गुरुपुंगवपुंगवकेतन ते
समतामयतां न हि कोऽपिसुधीः।
शरणागतवत्सल तत्त्वनिधे
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

८. विदिता न मया विशदैक कला
न च किंचन कांचनमस्ति गुरो।
द्रुतमेव विधेहि कृपां सहजां
भव शंकरदेशिक मे शरणम्।।

।। इति श्री तोटकाचार्यविरचितं तोटकाष्टम् सम्पूर्णम्।।

श्री सद्गुरु स्तुति

१. अपारं परं ईश्वरोपाधिभूतं, सुदिव्यं स्वरूपात्मकं व्यापकं वै।।
सुसत्त्वात्मकं जीवनं येन नीतं, सदा सद्गुरुं तं नमामो नमामः।।

२. धियो येन सर्वं परित्यक्तमासीत्, सदा ब्रह्मविद् सच्चिदानन्द रूपम्।।
अजं व्यापकं विश्वसंरक्षकं वै, सदा सद्गुरुं तं नमामो नमामः।।

३. सुशक्तं विरक्तं उदासीनभूतं, तथा पूर्णरूपं हि योगीश्वरन्नु।।
महासत्त्वरूपं सुसंस्थात्मकं वै, सदा सद्गुरुं तं नमामो नमामः।।

४. धृतं विग्रहं लोककल्याणकर्तुं, सुरम्यं कृतं प्राप्य कैलाशधामम्।।
सुधन्यं ऋषिकेश जातं प्रसिद्धं, सदासद्गुरुं तं नमामो नमामः।।

५. यतो जायते दृष्टिरेकैव यत्र, सदा तीर्थभूतं हि संजायते तत्।।
सुदिव्यं च तं प्राप्य साफल्यमेति, सदा सद्गुरुं तं नमामो नमामः।।



अच्युतं केशवं

अच्युतं केशवं राम नारायणं । कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिं।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं । जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।
राधिका नायकं कृष्णचन्द्रं भजे ।

राम धुन

राम राम राम राम राम राम राम राम
राम राम राम राम राम राम राम राम
त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।



आरती सद्गुरुदेव

आरती सद्गुरुदेव की कीजे।
तन-मन-धन सब अर्पण कीजे।

नहीं उआँ रैन नहीं उआँ तारा।
बिन रवि शशि सदा उजियारा।
आरती . . . .

नहीं उआँ तेल नहीं उआँ बाती।
जगमग ज्योति जगे दिन राती।
आरती . . . .

बिन जल बरसे अमृतधारा।
बिन मुख पीवे कोई पावन हारा।
आरती . . . .

दासों ने चरणों में शीश झुकाया।
दर्शन कर के परमपद पाया।
आरती . . . . ।

श्री गिरि माँ स्तुति

जय गिरि माँ, जय-जय गिरि माँ
जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव,
जय गिरि माँ जय जय गिरि माँ
जय जीवन मुक्त महा महिमा
जय गिरि माँ .... ।

जय कैलाश निवासिनी माँ
जय जय विन्ध्यवासिनी माँ
भक्त तरते तेरे गुण गा
जय गिरि माँ .... ।

भक्ति ज्ञान वैराग्य स्वरूपा
निजानन्द निरुपाधि अनूपा
अज अद्वैत विलासिनी माँ
जय गिरि माँ .... ।

तेरी महिमा अजब निराली
न लौटे दर से कोई खाली
भक्तों की झोली भरती माँ
जय गिरि माँ .... ।

चेतन ज्योति परमात्म ज्ञान की
वैराग्य विवेक विद्या निधान की
अन्त:करण प्रकाशिनी माँ
जय गिरि माँ .... ।

दुर्गुण हारिणी संकट टारिनी
जय जय माँ त्रय ताप निवारिणी
हरि पद प्रेम प्रदायिनी माँ
जय जय जय सुखदायिनी माँ
जय गिरि माँ .... ।

मानस मराल करे अरदासा
हृदय में भर दो पूर्ण प्रकाशा।
जगमग ज्योति जलाती माँ
जय गिरि माँ, जय जय गिरि माँ।

श्रीगुरुदेवाय नमः श्रीगुरुदेवाय नमः

श्री गुरुदेवाय नमः श्री गुरुदेवाय नमः
ले के धूप दीप तेरी आरती कराँ
ले के श्रद्धा के फूल तेरी भेंट धराँ
तुम्हरी महिमा है अपार महाँ
श्री गुरुदेवाय नमः . . . . .

तुम ही हरि हो तुम ही हर हो
तुम शेष महेश दिवाकर हो ।।
तुम्हरी . . . .

तुम सृष्टि के कर्ता-धर्ता हो
तुम सहज ही पालन कर्ता हो
तुम्हरी ....

तुम सहज ही ज्ञान प्रकाशक हो
घट अन्तर बाहर व्यापक हो
तुम्हरी . . . .

तुम मात पिता और भ्राता हो
तुम मुक्ति के भी दाता हो
तुम्हरी . . . .

तुम जानते हो हर इक जन की
नहीं भूल गए मेरे मन की ।।
तुम्हरी . . . . ।



आरती कुंज बिहारी

आरती कुंज बिहारी की, श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की।
गले में वैजयन्ती माला बजावे मुरली मधुर बाला
श्रवण में कुण्डल झल काला
नन्द के नन्द, मोहन ब्रजचन्द परम आनन्द
राधिका रमणबिहारी की ।
आरती ....
गगन सम अंग कान्ति काली, श्री राधा चमक रही आली
लतन में ठाढ़े बनवाली, भ्रमर सम अलक, कस्तूरी तिलक
चन्द्र सी झलक, ललित छबि श्यामा प्यारी की ।
आरती .... ।
कनकमय मोर मुकुट विलसे, देवता दर्शन को तरसे,
गगन से सुमन बहुत बरसे,
बजत मुरचंग, और मृदंग, ग्वालिनी संग
ललित छबि श्यामा प्यारी की ।
आरती .... ।
चरण स्यों प्रकटी भव गंगा, कलिमल हरणी श्री गंगा,
सकल दुःख हरणी श्री गंगा, बसे शिव सीस, जटा के बीच,
हरे अघ कीच, राधिका गौर श्याम मुख की
छवि निरखौं बनवारी की
आरती .... ।
चमकती उज्ज्वल तट रेणु, बाज रही वृन्दावन वेणु
नाच रहे गोपी ग्वाल धेनु, हसत मृदुमन्द, चान्दनी चन्द
कटत भव फन्द, टेर सुन दीन भिखारी की ।
आरती .... ।।
आरती राधा रानी की । आरती जगत् महारानी की ।
आरती श्यामा प्यारी की। श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की । ....

आरती श्रीमद्भगवद्गीता

ॐ जय भगवद्गीते मैय्या जय भगवद्गीते
हरिहिय कमल विहारिणी सुन्दर सुपुनीते।
ॐ जय .... ।

कर्म सुमर्म प्रकाशिनी, कामासक्ति हरा।।
तत्त्वज्ञान विकाशिनी, विद्या ब्रह्मपरा।।
ॐ जय .... ।

निश्चल भक्ति विधायिनी, निर्मल मल हारी।।
शरण रहस्य प्रदायिनी, सब विधि सुखकारी।।
ॐ जय .... ।

राग द्वेष विदारिणी, कारिणी मोद सदा।।
भव भय हारिणी तारिणी, परमानन्द प्रदा।।
ॐ जय .... ।

आसुर भाव विनाशिनी, नाशिनी तम रजनी।।
दैवी सद्गुण दायिनी, हरि रसिका सजनी।।
ॐ जय .... ।

समता त्याग सिखावनि, हरि मुख की बानी।।
सकल शास्त्र की स्वमिनी, श्रुतियों की रानी ।।
ॐ जय .... ।

दया सुधा बरसावनि, मातु कृपा कीजे।।
हरि–पद प्रेम प्रदान कर, अपनो कर लीजे।।
ॐ जय .... ।



आरती श्रीमद्भागवत महापुराण

आरती अति पावन पुराण की
धर्मभक्ति विज्ञान खान की।।

महापुराण भागवत निर्मल
शुक मुख विगलित निगम कल्प फल।
परमानन्द सुधामय कल,
लीला रति रस रस-निधान की।।

कलिमल मथनि त्रिताप निवारनि
जन्म मृत्युमय भवभय हारिणी।
सेवत सतत सकल सुख कारिणी
सुमहौषधि हरिचरित गान की।।

विषय विलास विमोह विनाशिनी
विमल वैराग्य विवेक विकाशिनी।
भगवत्तत्व रहस्य प्रकाशिनी
परम ज्योति परमात्म ज्ञान की।।

परमहंस मुनि मन उल्लासिनी,
रसिक हृदय रस रास विलासिनी।
भुक्ति-मुक्ति रति प्रेम सुदासिनी,
कथा आकिंचन प्रिय सुजान की।।

आरती अति .... ।
धर्मभक्ति .... ।।



आरती श्री रामायण जी की

आरती श्री रामायण जी की
कीरति कलित ललित सिय पी की।

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बाल्मीक बिग्यान बिसारद।।
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी।।

गावत बेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की।।

गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
काग भुसुंडि गरुड़ के ही की।।

कलिमल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।।
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की।।
आरती श्री रामायण जी की ....



ॐ

श्रीगणेशाय नमः

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

।। अथ रुद्रशापविमोचनम्।।

अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामशापविमोचनमन्त्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीरुद्रानुग्रहशक्तिर्देवता, सुरेशः शरणं शर्मेति बीजम्, अनन्तोहुत भुग्भोक्तेति शक्तिः, सुरेश्वरायेति कीलकं रुद्रशापविमोचने विनियोगः। **ऋष्यादिन्यासः-** श्रीमहादेवर्षये नमः शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। श्रीरुद्रानुग्रहशक्तिर्देवतायै नमः हृदये। सुरेशः शरणं शर्म्मेति बीजाय नमः गुह्ये। अनन्तो हुतभुग्भोक्तेति शक्तये नमः पादयोः। सुरेश्वरायेति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः- **ॐ क्लीं ह्राँ अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः।**
ॐ ह्रूं मध्यमाभयां नमः। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अङ्गन्यासः- **ॐ क्लीं ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा।**
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। ॐ ह्रैं कवचाय हुम्।
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्- **तमालश्यामलतनुं पीतकौशेयवाससम्।**
वर्णमूर्तिमयं देवं ध्यायेन्नारायणं विभुम्।

अथ मंत्रः-

ॐ क्लीं ह्रं ह्रां ह्रीं ह्रैं ह्रौं ह्रः स्वाहा इति मन्त्रं शतवारं वा दशवारं वा जप्त्वा किञ्चिज्जलं क्षिप्त्वा प्रार्थयेत्।

अस्य श्रीविष्णोः सहस्रनामस्तवस्य रुद्रशापविमुक्तो भव इति प्रार्थनानन्तरं सहस्रनामपठनं कुर्यात्। विष्णोः सहस्रनाम्नां यो न कृत्वाशापमोचनम् पठेच्छुभानि सर्वाणि तस्य स्युर्निष्कलानि तु। इत्यगस्तिसंहितायां विष्णोःसहस्रनाम्ना रुद्रशापविमोचनविधिः समाप्तः शुभम्।



श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

(शाङ्करभाष्ययुतम्)

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥

॥ अथ श्रीमज्जगद्गुरुशङ्कराचार्यविरचितं भाष्यम् ॥

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥१॥
कृष्णद्वैपायनं व्यासं सर्वलोकहिते रतम्।
वेदाब्जभास्करं वन्दे शमादिनिलयं मुनिम्॥२॥
सहस्रमूर्तेः पुरुषोत्तमस्य सहस्रनेत्राननपादबाहोः।
सहस्रनाम्नां स्तवनं प्रशस्तं निरुच्यते जन्मजरादिशान्त्यै॥३॥

वैशम्पायनो जनमेजयमुवाच—

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत॥1॥

धर्मान् **अभ्युदयनिःश्रेयसोत्पत्तिहेतुभूतान् चोदनालक्षणान्** अशेषेण **कार्त्स्न्येन** पावनानि **पापक्षयकराणि धर्मरहस्यानि** च सर्वशः **सर्वप्रकारैः** श्रुत्वा युधिष्ठिरो **धर्मपुत्रः** शान्तनवं **शान्तनुसुतं भीष्मं सकलपुरुषार्थसाधनं सुखसम्पाद्यम् अल्पप्रयासम् अनल्पफलम् अनुक्तमिति कृत्वा** पुनः **भूय** एव अभ्यभाषत **प्रश्नं कृतवान्**॥1॥

युधिष्ठिर उवाच—

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।

स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥2॥

किमेकं दैवतं **देव इत्यर्थः, स्वार्थे तद्धितप्रत्ययविधानात्,** लोके **लोकनहेतुभूते समस्तविद्यास्थाने उक्तम् 'यदाज्ञया प्रवर्तन्ते सर्वे' इति प्रथमः प्रश्नः।**

किं वाप्येकं परायणम् **अस्मिँल्लोके एकं परायणं च किम्? परम् अयनं प्राप्तव्यं स्थानं यस्मिन्निरीक्षिते—**

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥' (मु० उ० २।२।८)

इति श्रुतेः हृदयग्रन्थिर्भिद्यते।

यस्य विज्ञानमात्रेणानन्दलक्षणो मोक्षः प्राप्यते; यद्विद्वान्न विभेति कुतश्चन; यत्प्रविष्टस्य न विद्यते पुनर्भवः; यस्य च वेदनात्तदेव भवति, 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु० उ० ३। २। ९) **इति श्रुतेः। यद्विहायापरः पन्था नृणां नास्ति,** 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० उ० ६। १५) **इति श्रुतेः।**

तदुक्तमेकं परायणं लोके यत्तत् किमिति द्वितीयः प्रश्नः।

कं **कतमं देवं** स्तुवन्तः **गुणसङ्कीर्तनं कुर्वन्तः,** कं **कतमं देवम्** अर्चन्तः **बाह्यमाभ्यन्तरं चार्चनं बहुविधं कुर्वन्तः** मानवा **मनुसुताः** शुभं **कल्याणं स्वर्गादिफलं** प्राप्नुयुः **लभेरन्निति पुनः प्रश्नद्वयम्**॥2॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।

किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥3॥

को धर्मः **पूर्वोक्तलक्षणः** सर्वधर्माणां **सर्वेषां धर्माणां मध्ये** भवतः परमः **प्रकृष्टो** मतः **अभिप्रेत इति पञ्चमः प्रश्नः।**

किं जपन् **किं जप्यं जपन् उच्चोपांशुमानसलक्षणं जपं कुर्वन्** जन्तुः **जननधर्मा। अनेन जन्तुशब्देन जपार्चनस्तवनादिषु यथायोग्यं सर्वप्राणिनामधिकारं सूचयति** जन्मसंसारबन्धनात् **जन्म अज्ञानविजृम्भितानामविद्याकार्याणामुपलक्षणम्, संसारोऽविद्या ताभ्यां जन्म संसाराभ्यां यद्बन्धनं तस्मात्** मुच्यते **मुक्तो भवतीति षष्ठः प्रश्नः।**

मुच्यते जन्म संसारबन्धनादितीदमुपलक्षणम् इतरेषां फलानामपि एतद्ग्रहणं मोक्षस्य प्राधान्यख्यापनार्थम्।।3।।

किमेकमिति षट्प्रश्नाः कथिताः। तेषु पाश्चात्योऽनन्तरो जप्यविषयः षष्ठः प्रश्नोऽनेन श्लोकेन परिह्रियते।

श्रीभीष्म उत्तरमुवाच—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः।।4।।

सर्वेषां बहिरन्तः शत्रूणां भयहेतुर्भीष्मः मोक्षधर्मादीनां प्रवक्ता सर्वज्ञः।

जगत् **स्थावरजङ्गमात्मकं तस्य** प्रभुं **स्वामिनम्,** देवदेवं **देवानां ब्रह्मादीनां देवम्,** अनन्तं **देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नम्,** पुरुषोत्तमं **क्षराक्षराभ्यां कार्यकारणाभ्यामुत्कृष्टम्,** नामसहस्रेण **नाम्ना सहस्रेण** स्तुवन् **गुणान् सङ्कीर्तयन्** सततोत्थितो **निरन्तरमुद्युक्तः।** पुरुषः **पूर्णत्वात् पुरि शयनाद्वा पुरुषः— 'सर्वदुःखकातिगो भवेत्' इति सर्वत्र सम्बध्यते।।4।।**

उत्तरेण श्लोकेन चतुर्थः प्रश्नः समाधीयते—

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च।।5।।

तमेव चार्चयन् **बाह्यार्चनं कुर्वन्** नित्यं **सर्वेषु कालेषु भक्तिर्भजनं तात्पर्यं तया** भक्त्या पुरुषमव्ययं **विनाशक्रियारहितम्,** तमेव च ध्यायन्

आभ्यन्तरार्चनं कुर्वन्, स्तुवन् पूर्वोक्तेन नमस्यन् नमस्कारं कुर्वन्, पूजाशेषभूतमुभयं स्तुतिनमस्कारलक्षणं यजमानः पूजकः फलभोक्ता।

अथवा, अर्चयन्नित्यनेनोभयविधमर्चनमुच्यते। ध्यायंस्तु-वन्नमस्यंश्चेत्यनेन मानसं वाचिकं कायिकं चोच्यते।।5।।

तृतीयं प्रश्नं परिहरति उत्तरैस्त्रिभिः पादैः—

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्।।6।।

अनादिनिधनं षड्भावविकारवर्जितम्, विष्णुं व्यापनशीलम्, सर्वं लोक्यते इति लोको दृश्यवर्गो लोकस्तस्य नियन्तृणां ब्रह्मादीनामपीश्वरत्वात् सर्वलोकमहेश्वरः तम्, लोकं दृश्यवर्गं स्वाभाविकेन बोधेन साक्षात्पश्यतीति लोकाध्यक्षः तं, नित्यं निरन्तरं स्तुवन् सर्वदुःखातिगो भवेद् इति त्रयाणां स्तवनार्चनजपानां साधारणं फलवचनम्। सर्वाण्याध्यात्मिकादीनि दुःखान्यतीत्य गच्छतीति सर्वदुःखातिगो भवेत् स्यात्।।6।।

पुनरपि तमेव स्तुत्यं विशिनष्टि—

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्।।7।।

ब्रह्मण्यं ब्रह्मणे स्रष्ट्रे ब्राह्मणाय तपसे श्रुतये हितम्, सर्वान् धर्मान् जानातीति सर्वधर्मज्ञः तं लोकानाम् प्राणिनां कीर्तयः यशांसि स्वशक्त्यानुप्रवेशेन वर्धयतीति तं लोकैर्नाथ्यते लोकानुपतापयते शास्ते लोकानामीष्ट इति वा लोकनाथः तम्, महद् ब्रह्म-विश्वोत्कर्षेण वर्तमानत्वात्- महद्भूतं परमार्थसत्यम् सर्वभूतानां भवः संसारो यत्सकाशादुद्भवतीति सर्वभूतभवोद्भवः तम्।।7।।

पञ्चमं प्रश्नं परिहरति—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ।।8।।

सर्वेषां चोदनालक्षणानां धर्माणामेष **वक्ष्यमाणो** धर्मोऽधिकतम् **इति** मे **मम** मतः **अभिप्रेतः**, यद्भक्त्या **तात्पर्येण** पुण्डरीकाक्षं **हृदयपुण्डरीके प्रकाशमानं वासुदेवं स्तवैर्गुणसङ्कीर्तनलक्षणैः स्तुतिभिः** सदार्चेत् **सत्कारपूर्वकमर्चनं करोति** नरः **मनुष्य इति यद् एष धर्म इति सम्बन्धः।**

अस्य स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्याधिक्ये किं कारणम्? उच्यते—

हिंसादिपुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेशकालादिनियमानपेक्षत्वम् आधिक्ये कारणम्।

'ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्।।
इति विष्णुपुराणे (६।२।१७)।

'जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।।'
इति मानवं वचनम् (मनु० २।८७)।

'जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया च भूतानां जपयज्ञः प्रवर्तते।।'

इति महाभारते। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०। २५) **इति भगवद्वचनम्। एतत्सर्वमभिप्रेत्य** 'एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।' (वि० स० ८) **इत्युक्तम्**।।8।।

द्वितीयं प्रश्नं समाधत्ते—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ।।9।।

परमं **प्रकृष्टं** महद् **बृहत्** तेजः **चैतन्यलक्षणं सर्वावभासकम्**, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः।' (तै० ब्रा० ३। १२। ९७) 'तद्देवो ज्योतिषां ज्योतिः' (बृ० उ० ४।४।१६) 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्' (मु० उ० २।२।१०) **इत्यादिश्रुतेः**, 'यदादित्यगतं तेजः' (गीता १५। १२) **इत्यादिस्मृतेश्च।**

परमं तपः **तपत आज्ञापयतीति तपः**, 'य इमं च लोकं परं च लोकः सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयति' (बृ० उ० ३। ७। १) **इत्यन्तर्यामि ब्राह्मणे सर्वनियन्तृत्वं श्रूयते।** 'भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' (तै० उ० २।८।१) **इत्यादितैत्तिरीयके। तपतीष्ट इति वा तपः तस्यैश्वर्यमनवच्छिन्नमिति महत्त्वम्** 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६) **इत्यादिश्रुतेः।** परमं **सत्यादिलक्षणं** ब्रह्म **महनीयतया** महत्। परमं **प्रकृष्टं पुनरावृत्तिशङ्कारहितम्।** परायणं **परम् अयनं परायणम्। परमग्रहणात् सर्वत्र अपरं तेजः आदित्यादिकं व्यावर्त्यते। सर्वत्र यो देव इति विशेष्यते च—**

यो देवः परमं तेजः परमं तपः परमं ब्रह्म परमं परायणं स एकं सर्वभूतानां परायणमिति वाक्यार्थः॥9॥

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥10॥

पवित्राणां पवित्रं **पावनानां तीर्थादीनां पवित्रम्। परमस्तु पुमान् ध्यातो दृष्टः कीर्तितः स्तुतः सम्पूजितः स्मृतः प्रणतः पाप्मनः सर्वानुन्मूलयतीति परमं पवित्रम्। संसारबन्धहेतुभूतं पुण्यापुण्यात्मकं कर्म तत्कारणं चाज्ञानं सर्वं नाशयति स्वयाथात्म्यज्ञानेनेति वा पवित्राणां पवित्रम्।**

'रूपमारोग्यमर्थांश्च भोगांश्चैवानुषङ्गिकान्।
ददाति ध्यायतो नित्यमपवर्गप्रदो हरिः॥'

'चिन्त्यमानः समस्तानां क्लेशानां हानिदो हि यः।
समुत्सृज्याखिलं चिन्त्यं सोऽच्युतः किं न चिन्त्यते।।'

'ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु।
प्रायश्चित्तं हि सर्वस्य दुष्कृतस्येति वै श्रुतिः।।'

(गरुड० १। २३०। २८)

'संसारसर्पसन्दष्टनष्टचेष्टैकभेषजम्।
कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रं श्रुत्वा मुक्तो भवेन्नरः।।'

'अतिपातकयुक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्।
भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः।।'

'आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।।'

(लिङ्ग० २। ७। ११)

'हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्।।'

(हरि० ३। ८९। ९)

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।'

(मु० उ० २। २। ८)

'यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः।।'

(विष्णु० ६। ८। २०)

'अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव।।'

(विष्णु ६। ८। १९)

'ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्।।'
(विष्णु० ६। २। १७)

'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।'
(बृ० नारद० १।११।१००)

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात्।
तत् सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा।।'
'यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते।।'
(विष्णु० ६। ८। ५७)

'शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
शान्तिः कलौ ह्यघौघस्य नामसङ्कीर्तनं हरेः।।'
'हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।'
(बृ० नारद० १। ४१। १५)

'स्तुत्वा विष्णुं वासुदेवं विपापो जायते नरः।
विष्णोः सम्पूजनान्नित्यं सर्वपापं प्रणश्यति।।'
'सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः।।'
(स्कन्द० ५। ३। १५७। ७)

नित्यं सञ्चिन्तयेद्देवं योगयुक्तो जनार्दनम्।
सास्य मन्ये परा रक्षा को हिनस्त्यच्युताश्रयम्।।'

'गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु।
यत् पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ।।'
(गरुड० १। २३०। १८)

'मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमनामयम्।
सोऽपि सिद्धिमवाप्नोति किंपुनस्तत्परायणः।।'
'प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्।।'
(विष्णु० २। ६। ३९)

'कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृद्यत्रापि संस्मृते।।'
(विष्णु० ६। ८। २१)

'सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणां जन्मशतैः कृतम्।
पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः।।'
'यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम्।।'
(विष्णु० ६। ७। ७४)

'एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्त्ते ध्यानवर्जिते।
दस्युभिर्मुषितेनेव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम्।।'
'जनार्दनं भूतपतिं जगद्गुरुं स्मरन् मनुष्यः सततं महामुने।
दुःखानि सर्वाण्यपहन्ति साधयत्यशेषकार्याणि च यान्नभीप्सते।।'
'एवमेकाग्रचितः सन् संस्मरन् मधुसूदनम्।
जन्ममृत्युजराग्राहं संसाराब्धिं तरिष्यति।।'
'कलावत्रापि दोषाढ्ये विषयासक्तमानसः।
कृत्वापि सकलं पापं गोविन्दं संस्मरञ्छुचिः।।'
'वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम्।।'
(विष्णु० २। ६। ४१)

'लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभावमीषत् प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम्।
जन्मान्तरप्रलयकल्पसहस्रजातमाशु प्रणाशमुपयाति नरस्य पापम्।।'
'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।'
(महा शान्ति० ४७। ९०)

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्।।'
(महा० शान्ति० ४७। ९१)

'शाठ्येनापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये।
संसारस्थूलबन्धानामुद्वेजनकरो हि सः।।'

इत्यादिश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणवचनेभ्यः।

मङ्गलानां च मङ्गलं **मङ्गलं सुखं तत्साधनं तज्ज्ञापकं च, तेषामपि परमानन्दलक्षणं परं मङ्गलमिति मङ्गलानां च मङ्गलम्।** दैवतं देवतानां च **देवानां देवः, द्योतनादिभिः समुत्कर्षेण वर्तमानत्वात्।** भूतानां यः अव्ययः **व्ययरहितः** पिता **जनको यो देवः, स एकं दैवतं लोक इति वाक्यार्थः।**

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।' (६। ११)

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।' (६। १८)

इति श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषदि।

'सेयं देवतैक्षत' (६। ३। २) 'एकमेवाद्वितीयम्' (६। २। १) **इति छान्दोग्ये।**

ननु कथम् एको देवः जीव परयोर्भेदात्?

न; 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० उ० २। ६) 'स एष इह प्रविष्ट

आनखाग्रेभ्यः' (बृ० उ० १।४।७) **इत्यादि श्रुतिभ्योऽविकृतस्य परस्य बुद्धितद्वृत्तिसाक्षित्वेन प्रवेशश्रवणादभेदः। प्रविष्टानामितरेतरभेदात् परात्मैकत्वं कथमिति चेत्, न;** 'एको देवः बहुधा सन्निविष्टः' (तै० आ० ३। १४) 'एकः सन् बहुधा विचारः' (तै० आ० ३।११) 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः' (तै० आ० ३। १४) **इत्येकस्यैव बहुधा प्रवेशश्रवणात् प्रविष्टानां च न भेदः।**

'हिरण्यगर्भः'; (ऋ० वे० १०। १२१। १) **इत्यष्टौ मन्त्राः।** 'कस्मै देवाय' **इत्यत्र एकारलोपेनैकदैवतप्रतिपादकस्तैत्तिरीयके।**

'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।
'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।
'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।
'एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।
'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।'

इति काठके (२। २। ९-१३)

'ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं **सन्न** व्यभवत् (१। ४। ११) 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टा' (३। ७। २३) **इत्यादिबृहदारण्यके।**

'अनेजदेकं मनसो जवीयः' (ई० उ० ४) 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७) **इति ईशावास्ये।**

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्।' (ऐ० उ० १।१) 'सर्वेषां भूतानामन्तरः पुरुषः स म आत्मेति विद्यात्।' (ऐ० आ० ३।४।१०)

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋ० सं० १। २२। १६४। ४६) 'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।' 'द्यावाभूमी जनयन्देव एकः।' 'एको दाधार भुवनानि विश्वा' 'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः' **इति ऋग्वेदे।** 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' **इति छान्दोग्ये** (६। २। १)।

'सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥' (६। ३१)
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥' (५। १८)
'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥' (१०। २०)
'यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥' (१३। ३०)
'यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥' (१३। ३३)
'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥' (१८ । ६६)

इति गीतोपनिषत्सु।

'हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्॥'
(हरि० ३। ८९। ९)

'आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तम।
धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन॥'

इति हरिवंशे।

भवति मनोर्माहात्म्यख्यापिनी श्रुतिः 'यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद्भेषजम्' (तै० सं० २। १०। २) **इति।**

मनुना चोक्तम्—

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन्नात्मयाजी वै स्वाराज्यमधिगच्छति॥'
इति (मनु० १२। ९१)

'सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥
(विष्णु० १। २। ६६)

तस्मान्न विज्ञानमृतेऽति किञ्चित् क्वचित् कदाचिद् द्विज वस्तुजातम्।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेदाद् विभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम्॥
ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम्।
एकः सदैकः परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽस्ति किञ्चित्॥'
(विष्णु० २। १२। ४३-४४)

'यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः।
तदा हि को भवान् सोऽहमित्येतद्विफलं वचः॥'
(विष्णु० २। १३। ९१)

'सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।
भ्रान्तदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक् पृथक्॥
एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम्॥
इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः।'
(विष्णु० २। १६। २२-२४)

यमेनोक्तम्—

'सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्॥'
(विष्णु० ३। ७। ३२)

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेव दिवौकसः।
अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम्।।
'विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेवं परस्परम्।
आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते।।'
(विष्णु ५। १। ३०-३१)

'भवानहं च विश्वात्मन्नेक एव हि कारणम्।
जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनावां व्यवस्थितौ।।'
(विष्णु० ५। ९। ३२)

'त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया।
मत्तो विभिन्नमात्मानं द्रष्टुं नार्हसि शङ्कर।।'
'योऽहं स त्वं जगच्चेदं सादेवासुरमानुषम्।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।।'
(विष्णु० ५। ३३। ४७-४९)

इति श्रीविष्णुपुराणे—

'विष्णोरन्यं तु पश्यन्ति ये मां ब्रह्माणमेव वा।
कुतर्कमतयो मूढाः पच्यन्ते नरकेष्वधः।।'
'ये च मूढा दुरात्मानो भिन्नं पश्यन्ति मां हरेः।
ब्रह्माणं च ततस्तस्माद् ब्रह्महत्यासमं त्वघम्।।'

इति भविष्योत्तरपुराणे महेश्वरवचनम्।

तथा च हरिवंशे कैलासयात्रायां महेश्वरवचनम्—

'आदिस्त्वं सर्वभावानां मध्यमन्तस्तथा भवान्।
त्वत्तः सर्वमभूद् विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते।।'
(हरि० ३। ८८। ५१)

'अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्त्रये।।'
'नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा।।'

'त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते।
यश्च त्वां द्वेष्टि भो देव स मां द्वेष्टि न संशयः।।
'त्वद्विस्तारो यतो देव ह्यहं भूतपतिस्ततः।
न तदस्ति विभो देव यत्ते विरहितं क्वचित्।।'
'यदासीद् वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किञ्चित् त्वया न हि।।'
(हरि० ३। ८८। ६०-६४)

इत्यादिवाक्यान्येकत्वप्रतिपादकानि।

अपि च— 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च' (ब्र० सू० ४। १। ३)

आत्मेत्येवं शास्त्रोक्तलक्षणः परमात्मा प्रतिपत्तव्यः। तथा हि परमात्मप्रक्रियायां जाबाला आत्मत्वेनैवैनमभ्युपगच्छन्ति— 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि' **इति। तथान्येऽपि—** 'यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह' (क० उ० २। १। १०) 'स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः' (तै० उ० २।८।१२) 'तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति' (बृ० उ० १।४।१०) 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म' (बृ० उ० २। ५। १९) 'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म' (बृ० उ० ४। ४। २५) **इत्येवमादय आत्मत्वोपगमा द्रष्टव्याः। ग्राहयन्ति च बोधयन्ति चात्मत्वेनेश्वरं वेदान्तवाक्यानि—** 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' (बृ० उ० ३। ७। ३। २३) 'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' (के० उ० १। ५) 'तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि' (छा० उ० ६। ८। १६) **इत्येवमादीनि।**

ननु प्रतीकदर्शनमिदं विष्णुप्रतिमान्यायेन भविष्यति।

तदयुक्तम्, गौणत्वप्रसङ्गात्, वाक्यवैरूप्याच्च। यत्र हि प्रतीकदृष्टिभिरप्रेयते सकृदेव तत्र वचनं भवति। यथा— 'मनो ब्रह्म' (छा० उ० ३। १८। १) 'आदित्यो ब्रह्म' (छा० उ० ३। १९। १) **इति। इह पुनः** 'त्वमहमस्मि अहं वै त्वमसि' **इत्याह। अतः प्रतीकश्रुतिवैरू-**

प्यादभेदप्रतिपत्तिः। भेददृष्ट्यपवादाच्च। तथा हि- 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः' (बृ० उ० १। ४। १०) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (बृ० उ० ४। ४। १९) 'यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति' (क० उ० २। १। १४) 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' (बृ० उ० १। ४। २) 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य' (तै० उ० २। ७) 'सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' (बृ० उ० २। ४। ६) **इत्येवमाद्या भूयसी श्रुतिर्भेददृष्टिमपवदति।**

तथा 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० उ० ७। २५। २) 'आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २। ४। ६) 'ब्रह्मैवेदं विश्वम्' (मु० उ० २। २। ११) **इति श्रुतिः।**

तथा स्मृतिरपि—

'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।।' (गीता ४। ३५)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञेश्वरैकत्वं सर्वोपनिषत् प्रसिद्धं द्रक्ष्यसीत्यर्थः।

'सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।' (गीता १८। २०)

इति अद्वैतात्मज्ञानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तं भगवतापि। तस्मादात्मन्येवेश्वरे मनो दधीत।

'भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ।।' (विष्णु० ५।१८।५०)

इति च।

'अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।' (गीता १०। ४२)

इति च।

अविद्योपाधिपक्षेऽपि प्रमाणवादः समस्ति—

'एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ।।'

तथा विष्णुपुराणे—

'विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ।।' (६। ७। ९६)
'परात्मनोर्मनुष्येन्द्र विभागोऽज्ञानकल्पितः ।
क्षये तस्यात्मपरयोर्विभगोऽभाग एव हि ।।'

इति।

विष्णुधर्मे—

'यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते ।
नान्ये मलिनतां यान्ति दूरस्थाः कुत्रचित् क्वचित् ।।'
'तथा द्वन्द्वैरनेकैस्तु जीवे च मलिने कृते ।
एकस्मिन्नापरे जीवा मलिनाः सन्ति कुत्रचित् ।।'

इति।

ब्रह्मयाज्ञवल्क्ये—

'आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ।
तथात्मैकोऽप्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान् ।।'

'क्षरात्मानावीशते देव एकः' **इति श्वेताश्वतरे।** **छान्दोग्ये** 'स एकधा भवति' (७। २६। २) इत्यादि। 'स तत्र पर्येति' 'स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते' 'परोऽविकृत एवात्मा स्वात्मायं जीवः' **इति श्रुतेः।** 'स एष इह प्रविष्टः' **इति बृहदारण्यकश्रुतिः।** 'आत्मेत्येवोपासीत' 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वम्' (बृ० उ० २। ५। १९) 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता' (बृ० उ० ३। ७। २३) 'स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः' (बृ० उ० ४। ४। २२) 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते' (बृ० उ० १। ४। १०)

'एतदात्म्यमिदँ सर्वम् (छा० उ० ६। ८। ७) **इत्यादि।**

'निश्चरन्ति यथा लोहपिण्डात्तप्तात्स्फुलिङ्गकाः।
सकाशादात्मनस्तद्वत् प्रभवन्ति जगन्ति हि।।'

इति योगियाज्ञवल्क्ये।

'अजः शरीरग्रहणात् स जात इति कीर्त्यते।'

इति ब्राह्मे।

'सर्पवद्रज्जुखण्डस्तु निशायां वेश्ममध्यगः।
एको हि चन्द्रो द्वौ व्योम्नि तिमिराहतचक्षुषः।।
'आभाति परमात्मा च सर्वोपाधिषु संस्थितः।
नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः।।
अहङ्काराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते।'

इति।

'एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना। संपरिष्वक्तः' (बृ० उ० ४। ३। २१)

'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति' (छा० उ० ६। ८। १) **इति।**

एवं—

'स्वमायया स्वमात्मानं मोहयन् द्वैतमायया।
गुणाहितं स्वमात्मानं लभते च स्वयं हरिः।।'

तथा 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' (गीता १३। २) 'उत्क्रामन्तं स्थितं वापि' (गीता १५। १०) 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम् (गीता ५। १५)' अव्यक्तादिविशेषान्तमविद्यालक्षणं स्मृतम्' 'आसीदिदं तमोभूतम्' (मनु० १।५) 'वाचारम्भणम् (छा० उ० ६। १। ४) 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति। यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् तत् केन कं जिघ्रेत्' (बृ० उ० २। ४। १४)

'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।'
(ई० उ० ७)

'यत्र नान्यत् पश्यति नान्यद् विजानाति' (छा० उ० ७। २४। १) 'भेदोऽयमज्ञाननिबन्धनः' 'नेह नानास्ति किञ्चन' (क० उ० २। १। ११) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (क० उ० २। १। १०) 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० उ० ३। ३) 'यो योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः'।

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।
(श्वे० उ० ४। ५)

'देवात्मशक्तिं विदधे' 'न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद् विभक्तं यत् पश्येत्' (बृ० उ० ४। ३। २३) 'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः' (श्वे० उ० ३। २) **इत्यादि**।

'मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित् सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ।।' (३। ३१)

'प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ।।' (१। १७)

'यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ।
तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ।।' (३। २९)

इत्यादि गौडपादे।

'तर्केणापि प्रपञ्चस्य मनोमात्रत्वमिष्यताम् ।
दृश्यत्वात् सर्वभूतानां स्वप्नादिविषयो यथा ।।'

'द्वितीयाद् वै भयं भवति।' (बृ० उ० १। ४। २) 'ज्ञाते त्वात्मनि नास्त्येतत् कार्यकारणतात्मनः।' 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' (श्वे० ६। ११) 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' (बृ० उ० ४। ३। १५) **इति च**।

'विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् ।
द्रष्यव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ।।' (१। १७। ८४)

'सर्वत्रदैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ।।' (१। १७। १०)

'सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ।।' (१। १८। ३७)

इति विष्णु पुराणे।

'तत्त्वमसि' (छा० उ० ६। ८) 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ० उ० १। ४। १०) 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २। ४। ६) 'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ० उ० २। ५। १९) 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० उ० ७। १। ३) 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७)

इत्यादि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणलौकिकेभ्यश्च।

सिद्धेऽर्थेऽपि वेदस्य प्रामाण्यमेष्टव्यम्—

'स्वपक्षसाधनैरकार्यमर्थजातमाह चेत्।
तथा परोऽपि वेद चेच्छ्रुतिः परात्मदृङ् न किम्।।'

इत्यभियुक्तैरुक्तम्।

अन्यान्वितस्वार्थे पदानां सामर्थ्यं न कार्यान्वितस्वार्थे, तथा सत्यर्थवादानामनन्वयप्रसङ्गात् अन्वयबुद्धेः स्तुतित्वात्। न हि भवति

'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामो वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' **इति।**

रागस्यैव प्रवर्तकत्वम्, न नियोगस्य।

तथा च श्रुतिः- 'अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म तदभिसम्पद्यते।'

तथा च स्मृतिरपि—

'अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कस्यचित् ।
यद् यद्धि कुरुते कर्म तत्तत् कामस्य चेष्टितम् ।।' (मनु० २। ४)
इति।

'काम एष क्रोध एषः' (गीता ३। ३७) **इति। अन्यपराणामपि मन्त्रार्थवादानां प्रामाण्यमङ्गीकर्तव्यम्। तेषामप्रामाण्यकथनेन उरगत्वं गतवान्नहुषः। तत्कथम्?—**

'ऋषयस्तु परिश्रान्ता वाह्यमाना दुरात्मना।
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः।।८।।

पप्रच्छुः संशयं ते तु नहुषं पापचेतसम्।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्।।९।।

एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव।
नहुषो नेति तानाह सहसा मूढचेतनः।।१०।।'

ऋषय ऊचुः—

अधर्मे सम्प्रवृत्तस्त्वं धर्मं च विजिघृक्षसि।
प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः।।११।।

अगस्त्य उवाच—

ततो विवदमानः सन् ऋषिभिः सह पार्थिवः।
अथ सामस्पृशन्मूर्ध्नि पादेनाधर्मपीडितः।।१२।।
तेनाभूद्धतचेताः स निःश्रीकश्च शचीपते।
ततस्तमहमुद्विग्नमवोचं भयपीडितम्।।१३।।
यस्मात् पूर्वैः कृतं मार्गं महर्षिभिरनुष्ठितम्।
अदुष्टं दूषयसि वै यच्च मूर्ध्न्यस्पृशः पदा।।१४।।
यच्चापि त्वमृषीन्मूढ ब्रह्मकल्पान् दुरासदान्।।१५।।
वाहान् कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभः।

त्वं स्वपापपरिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीपते।।१६।।
दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महीम्।
विचरिष्यसि तीर्णश्च पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि।।१७।।

इति श्रीमहाभारते (उद्योग० १७) **अतः श्रद्धेयमात्मज्ञानम्—**

'अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मास्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निर्वतन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।' (गीता ९।३)

इति श्रीभगवद्वचनात्।

ऐतरेयके च 'एष पन्था एतत्कर्मैतद्ब्रह्मैतत्सत्यं तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयान्न ह्यत्यायन्पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः।' (ऐ० आ० २। १। १)

तदुक्तमृषिणा— 'प्रजा ह तिस्र अत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे। बृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आविवेश' (ऐ० आ० २। १। ४) **इति।**

'प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या वै ता इमाः प्रजा : तिस्रोऽत्यायमीयुस्तानीमानि वयांसि वङ्गा वगधाश्चेरपादाः' (ऐ० आ० २। १। ५) **इति श्रुतम्। वङ्गा वनगाः वृक्षाः। वगधाः ओषधयश्च। इरपादा उरःपादाः सर्पादयः।**

तथा च ईशावास्ये अविद्वन्निन्दार्थो मन्त्रः—

'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।' **इति** (ई० उ० ३)

'असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्' **इति तैत्तिरीये (२। ६)। तथा शकुन्तलोपाख्याने—**

'योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा।।'

इत्यलमतिप्रसङ्गेन।

सहस्रनामजपस्य अनुरूपं मानसस्नानमुच्यते—

'यस्मिन् देवाश्च वेदाश्च पवित्रं कृत्स्नमेकताम्।
व्रजेत्तन्मानसं तीर्थं तत्र स्नात्वामृतो भवेत्।।

'ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।।'

सरस्वती रजोरूपा तमोरूपा कलिन्दजा।
सत्त्वरूपा च गङ्गा च न यान्ति ब्रह्म निर्गुणम्।।'

'आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यह्रदा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।।'

इति महाभारते।

'मानसं स्नानं विष्णुचिन्तनम्'

इति स्मृतौ।

'जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।।'

इति मानवं वचनम् (मनु० २। ८७)

'जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया च भूतानां जपयज्ञः प्रवर्तते।।'

इति।

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।' **इति श्रीगीतायाम्** (१०। २४)

'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।'

इत्यादि। (पद्म० ९। ८०। १२)।।10।।

यदेकं दैवतं प्रस्तुतं तस्योपलक्षणमुच्यते—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।।11।।

यतः **यस्मात्** सर्वाणि भूतानि भवन्ति **उद्भवन्ति** आदियुगागमे **कल्पादौ।**

यस्मिंश्च प्रलयं **विलयं** यान्ति **विनाशं गच्छन्ति** पुनः **भूयः**, एव **इत्यवधारणार्थः; नान्यस्मिन्नित्यर्थः।** युगक्षये **महाप्रलये।**

चकारान्मध्येऽपि यस्मिंस्तिष्ठन्ति।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै० उ० ३। १) **इति श्रुतेः।।11।।**

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ।।12।।

तस्य **एवं लक्षणलक्षितस्यैकदैवतस्य** लोकप्रधानस्य **लोकनहेतुभिः विद्यास्थानैः प्रतिपाद्यमानस्य** जगन्नाथस्य **जगतां नाथः स्वामी मायाशबलः परमात्मा निर्लेपश्च तस्य** भूपते **महीपाल**, विष्णोः **व्यापनशीलस्य** नामसहस्रम्, **नाम्नां सहस्रम् अशुभकर्मकृतं पापं संसारलक्षणभयं चापहन्तीति** पापभयापहं **त्वं मे मत्तः** शृणु **एकाग्रमना भूत्वावधारयेत्यर्थः।**

'एकस्यैव समस्तस्य ब्रह्मणो द्विजसत्तम।
नाम्नां बहुत्वं लोकानामुपकारकरं शृणु।।'

'निमित्तशक्तयो नाम्नां भेदिन्यस्तदुदीरणात्।
विभिन्नान्येव साध्यन्ते फलानि द्विजसत्तम।।'

'यच्छक्ति नाम यत्तस्य तत्तस्मिन्नेव वस्तुनि।
साधकं पुरुषव्याघ्र सौम्ये क्रूरेषु वस्तुषु।।'

इति विष्णुधर्मवचनाद्यद्यपि परस्य ब्रह्मणः षष्ठीगुणक्रियाजातिरूढीनां शब्दप्रवृत्तिहेतुभूतानां निमित्तशक्तीनां चासम्भवः; तथापि सगुणे ब्रह्मणि सविकारे च सर्वात्मकत्वात्तेषां शब्दप्रवृत्तिहेतूनां सम्भवात् सर्वे शब्दाः परस्मिन् पुंसि वर्तन्ते।।12।।

तत्र—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।

ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ।।13।।

यानि नामानि गौणानि **गुणसम्बन्धीनि गुणयोगात् प्रवृत्तानि तेषु च यानि** विख्यातानि **प्रसिद्धानि** ऋषिभिः **मन्त्रैस्तद्दर्शिभिश्च** परिगीतानि **परितः समन्ततः परमेश्वराख्यानेषु तत्र तत्र गीतानि महांश्चासावात्मेति** महात्मा-

'यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह।
यच्चास्ति सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते।।'

(लिङ्ग० १। ७०। ९६)

इति वचनादयमेव महानात्मा। तस्याचिन्त्यप्रभावस्य तानिवक्ष्यामि भूतये **पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यै भूतये पुरुषार्थचतुष्टयार्थिनामिति।।13।।**

प्रथमाह्निकम्।।१।।

*****

अथ सहस्रनाम

अत्र नामसहस्रे आदित्यादिशब्दानामर्थान्तरे प्रसिद्धानामादित्याद्यर्थानां तद्विभूतित्वेन तदभेदात् तस्यैव स्तुतिरिति प्रसिद्धार्थग्रहणेऽपि तत्स्तुतित्वम्।

'भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः।।

(विष्णु० ५। १८। ५०)

'ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य।।'

(विष्णु० २। १२। ३८)

इति विष्णुपुराणे।

'आदित्यानामहं विष्णुः' (१०। २१) **इत्यारभ्य** 'अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन। विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।' (१०। ४२) **इतिपर्यन्तं गीतायाम्।** 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' (मु० उ० २। २। ११) 'पुरुष एवेदं विश्वम्' (मु० उ० २। १। १०) **इति श्रुतिश्च।**

विष्ण्वादिशब्दानां पुनरुक्तानामपि वृत्तिभेदेनार्थभेदान्न पौनरुक्त्यम्। श्रीपतिर्माधव इत्यादीनां वृत्त्येकत्वेऽपि शब्दभेदान्न पौनरुक्त्यम्। अर्थैकत्वेऽपि न पौनरुक्त्यं दोषाय, नाम्नां सहस्रस्य किमेकं दैवतमिति पृष्टेरेकदैवतविषयत्वात्।

यत्र पुँल्लिङ्गशब्दप्रयोगस्तत्र विष्णुर्विशेष्यः; यत्र स्त्रीलिङ्गशब्दस्तत्र देवता विशेष्यते यत्र नपुंसकलिङ्गशब्दस्तत्र ब्रह्मेति विशेष्यते।

'यतः सर्वाणि भूतानि' (वि० स० ११) **इत्यारभ्य जगदुत्पत्तिस्थिति-लयकारणस्य ब्रह्मण एकदैवतत्वेनाभिहितत्वादादावुभयविधं ब्रह्म विश्वशब्देनोच्यते–**

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः।।14।।

विश्वस्य जगतः कारणत्वेन विश्वम् इत्युच्यते ब्रह्म। आदौ तु विश्वमिति कार्यशब्देन कारणग्रहणम्, कार्यभूतविरिञ्च्यादिनामभिरपि उपपन्ना स्तुतिर्विष्णोरिति दर्शयितुम्।

यद्वा, परस्मात् पुरुषान्न भिन्नमिदं विश्वं परमार्थतस्तेन विश्वमित्यभिधीयते ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।' (मु० उ० २। २। ११) 'पुरुष एवेदं विश्वम्' (मु० उ० २। १। १०) **इत्यादि श्रुतिभ्यस्तद्भिन्नं न किञ्चित् परमार्थतः सदस्ति।**

अथवा, विशतीति विश्वं ब्रह्म 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० उ० २। ६) **इति श्रुतेः। किञ्च संहतौ विशन्ति सर्वाणि भूतान्यस्मिन्निति विश्वं ब्रह्म** 'यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै० उ० ३। १) **इति श्रुतेः। तथा**

हि सकलं जगत् कार्यभूतमेष विशत्यत्र चाखिलं विशतीत्युभयथापि विश्वं ब्रह्म इति।

'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्' (क० उ० १। २। १४) **इत्यारभ्य-**

'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।'
(क० उ० १। २। १५)

'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।'
(क० उ० १। २। १६)

इति काठके।

'एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः' (५। २) **इत्युपक्रम्य** 'यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत' (५। ५) **इति प्रश्नोपनिषदि।** 'ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्।' (तै० उ० १। ८) **इति यजुर्वेदारण्यके।** 'तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णा। ओङ्कार एवेदं सर्वम्। **इति छान्दोग्ये** (२। २३। ३)।

'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' (मा० उ० १) **इत्युपक्रम्य**

'प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः।।'
'सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमन्तस्तथैव च।
एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनन्तरम्।।'
'प्रणवं हीश्वरं विद्यात् सर्वस्य हृदये स्थितम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति।।'
'अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः।
ओङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः।।'
(माण्डू० का० १। २६-२९)

इत्यन्ता माण्डूक्योपनिषत्।

'ॐ तद्ब्रह्म। ॐ तद्वायुः। ॐ तदात्मा। ॐ तत्सत्यम्। ॐ तत्सर्वम्।'
(ना० उ० ६८)

इत्यादिश्रुतिभिः।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ।।' (गीता ८।१३)

'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।।' (गीता ८।११)

'रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।। (गीता ७।८)

'महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।' (गीता १०।२५)
'आद्यं च त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।'
'एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।।' (अत्रि०१।११)

'प्रणवाद्यास्त्रयो वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ।
वाङ्मयं प्रणवं सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ।।' (अत्रि० १।९)

इत्यादिस्मृतेश्च विश्वशब्देनोङ्कारोऽभिधीयते वाच्यवाचकयोरत्यन्तभेदाभावाद् विश्वमित्योङ्कार एव ब्रह्मेत्यर्थः।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' (छा० उ० ३।१४।१)

इति एतदुक्तं भवति यस्मात् सर्वमिदं विकारजातं ब्रह्म तज्जत्वात्तल्लयत्वात्तदनत्वाच्च। न च सर्वस्यैकात्मत्वे रागादयः सम्भवन्ति। तस्माच्छान्त उपासीत इति श्रुतेः।

'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।'
(विष्णुधर्म० ३। २५५। ४४)

'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः॥' (गीता०६। ३२)

'निर्गुणः परमात्मात्र देहे व्याप्य व्यवस्थितः।
तमहं ज्ञानविज्ञेयं नावमन्ये न लङ्घये॥
'यद्यागमैर्न विन्देयं तमहं भूतभावनम्।
क्रमेयं त्वां गिरिं चेमं हनूमानिव सागरम्॥'
(महा वन० १४७। ८-९)

'बद्धवैराणि भूतानि द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः।
शोच्यान्यहोऽतिमोहेन व्याप्तनीति मनीषिणाम्॥
'एते भिन्नदृशां दैत्या विकल्पाः कथिता मया।
कृत्वाभ्युपगमं तत्र संक्षेपः श्रूयतां मम॥'
'विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत्।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः॥'
'समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद्यूयं तथा वयम्।
तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम्॥'
(विष्णु० १। १७। ८२-८५)

'सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य।'
(विष्णु १। १७। ९९)

'न मन्त्रादिकृतस्तात न च नैसर्गिको मम।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥'
'अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा।
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः।
तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम्॥'
'सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा।
चिन्तयन् सर्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम्॥'

शारीरं मानसं वाग्जं दैवं भूतभवं तथा।
सर्वत्र समचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः।।'
'एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्त्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम्।।'
(विष्णु० १। १९। ४-९)

'साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथापरौ।
उपायाः कथिता ह्येते मित्रादीनां च साधने।।
तानेवाहं न पश्यामि मित्रादींस्तात मा क्रुधः।
साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम्।।
सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः।।'
(विष्णु० १। १९। ३५-३७)

जडानामविवेकानामशूराणामपि प्रभो।
भाग्यभोग्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि।।
तस्माद्यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम्।
यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमपि चेच्छता।।
देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः।
रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम्।।'
'एतद् विजानता सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
द्रष्टव्यमात्मवद् विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक्।।'
'एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन् प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः।।'
(विष्णु १। १९। ४५-४९)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।' (गीता ७। १९)

इत्यादिवचनैश्च।

हिंसादिरहितेन स्तुतिनमस्कारादि कर्त्तव्यमिति दर्शयितुं विश्वशब्देन ब्रह्माभिधीयत इति वा।

'मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।' (गीता ११। ५५)
इति।

'न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः स्थिमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।'
(विष्णु० ३। ७। २०)

विमलमतिरमत्सरः प्रशान्तः शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः।।
वसति हृदि सनातने च तस्मिन् भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः।
क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः कथयति चारुतयैव सालपोतः।।'
(विष्णु० ३। ७। २४-२५)

'सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्।।
(विष्णु ३। ७। ३२)

'यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम्।
अपगतमदमानमत्सराणां व्रज भट दूरतरेण मानवानाम्।।'
(विष्णु० ३। ७। २६)

इत्यादिवचनैर्वैष्णवलक्षणस्यैवंप्रकारत्वाच्च हिंसादिरहितेन विष्णोः स्तुतिनमस्कारादिकर्तव्यमिति।

'श्रद्धया देयमश्रद्धायाऽदेयम्' (तै० उ० १। ११। ३) 'श्रद्धयाग्निः समिद्ध्यते' **इत्यादि श्रुतेः।**

'श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत्।' (महा० शान्ति० २६४। १३)

'इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।।' (वि० स० १३२)

'अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रतमदक्षिणं यज्ञमनृत्विजाहुतम्।
अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविर्भागाः षडेते तव दैत्यसत्तम।।'
'पुण्यं मद्द्वेषिणां यच्च मद्भक्तद्वेषिणां तथा।
क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम्।।'

'अश्रद्धया च यद् दानं यजतां ददतां तथा।
तत् सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद् भविष्यति।।'
(हरि० ३। ७२। ३७-३९)

'अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह ।।' (गीता १७। २८)

इत्यादिस्मृतिभिश्च श्रद्धया स्तुतिनमस्कारादिकर्तव्यमश्रद्धया न कर्तव्यम्।

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।' (गीता १७। २३)

इति भगवद्वचनात् स्तुतिनमस्कारादिकं कर्मासात्त्विकं विगुणमपि श्रद्धापूर्वकं ब्रह्मणोऽभिधानत्रयप्रयोगेण सगुणं सात्त्विकं सम्पादितं भवति।

आत्मानं विष्णुं ध्यात्वार्चनस्तुतिनमस्कारादिकर्तव्यम्।

'नाविष्णुः कीर्तयेद् विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत्।
नाविष्णुः संस्मरेद् विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयात्।।'

इति महाभारते कर्मकाण्डे।

'सर्वाण्येतानि नामानि परस्य ब्रह्मणोऽनघ।।'
(विष्णुधर्म० ३। १२३। १३)

'यं यं काममभिध्यायेत्तं तमाप्नोत्यसंशयम्।
सर्वकामानवाप्नोति समाराध्य जगद्गुरुम्।।'

'तन्मयत्वेन गोवन्दमेत्येतद् दाल्भ्य नान्यथा।
तन्मयोवाञ्छितान् कामान् यदवाप्नोति मानवः।।'

इति विष्णुधर्मे।

'सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।'

इति भगवद्गीतायाम् (६। ३१)

'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।
ईदृङ् मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति।।'

इति विष्णुपुराणे (१। २२। ८७)

'गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः।।'
(विष्णुधर्म० ३। २३३। ९२)

'तस्माद् ब्रह्मैवाचार्यस्वरूपेणावतिष्ठते।।'

इति स्मृते।

'वरं हुतवहज्वालापुञ्जस्यान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ताविमुखजनसंवासवैशसम्।।'

इति कात्यायनवचनाद् 'यत्र देशे वासुदेवनिन्दा तत्र वासो न कर्त्तव्यः।'

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।'
(६। २३)

इति श्वेताश्वतरोपनिषन्मन्त्रवर्णाद् हरौ गुरौ च परा भक्तिः कार्येति।

'अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव।।
(विष्णु० ६। ८। १९)

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्त्तनात्।
तत्सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा।।'
'कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृत् कृष्णस्य संस्मृतेः।।'
(विष्णु० ६। ८। २१)

'सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणां जन्मशतैः कृतम्।
पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः।।'
'सेयं वदनवल्मीकवासिनी रसनोरगी।
या न गोविन्द गोविन्द गोविन्देति प्रभाषते।।'
पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण तिष्ठति।
या न वक्ति दिवा रात्रौ गुणान् गोविन्दसम्भवान्।।'
'सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।'
(पद्म० ६। ८०। १६१)

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।'
(महा शांति० ४७। ९१)

एवमादिवचनैः श्रद्धाभक्त्योरभावेऽपि नामसङ्कीर्त्तनं समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धादिपूर्वकं सहस्रनामसङ्कीर्त्तनं नाशयतीति।

'मनसा वा अग्रे सङ्कल्पयत्यथ वाचा व्याहरति' 'यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति' **इति श्रुतिभ्यां स्मरणं ध्यानं च नामसङ्कीर्त्तनेऽन्तर्भूतम्।**

'यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्तं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते।।

इति विष्णुपुराणान्ते (६। ८। ५६) **श्रीपराशरेणोपसंहतम्।**

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।।'

इति श्रीमहाभारतान्ते भगवता श्रीवेदव्यासेनोपसंहतम्।

'हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्।।'

इति हरिवंशे (३। ८९। ९) **कैलासयात्रायां हरिरेको ध्यातव्य इत्युक्तं महेश्वरेणापि।**

एतत्सर्वमभिप्रेत्य 'एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः' **इत्याधिक्यमुक्तम्।**

'किमेकं दैवतम्' (वि० स० २) **इत्यारभ्य** 'किं जपन् मुच्यते जन्तुः' (वि० स० ३) **इति षट्प्रश्नेषु** 'यतः सर्वाणि' (वि० स० ११) **इति प्रश्नोत्तराभ्यं यद्ब्रह्मोक्तं तद्विश्वशब्देनोच्यत इति व्याख्यातम्।।१।।**

तत्किमित्याकाङ्क्षायामाह— 'विष्णु' **इति। तथा च ऋग्वेदे-** 'तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे' (२। २। २६) **इत्यादिश्रुतिभिर्विष्णोर्नामसङ्कीर्त्तनं सम्यग्ज्ञानप्राप्तये विहितम्। तमेव स्तोतारः पुराणं यथा ज्ञानेन सत्यस्य गर्भं जन्मसमाप्तिं कुरुत। जानन्तः आअस्य विष्णोः नामापि आवदत अन्ये वदन्तु मा वा हे विष्णो वयं ते सुमतिं शोभनं महः भजामहे इति श्रुतेरभिप्रायः।**

वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः विषव्याप्त्यभिधायिनो नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुरिति। देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य इत्यर्थः।

'व्याप्ते मे रोदसी पार्थ क्रान्तिश्चाभ्यधिका स्थिता।'
'क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः।।'

इति महाभारते (शान्ति० ३४१। ४२-४३)

'यच्च किञ्चिज्जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।।

इत्यादिश्रुतेर्बृहन्नारायणे (१३। १। २)

'सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म शोकमोहविनिर्मुक्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति' **इत्यात्मबोधोपनिषदि (१)**

विशतेर्वा नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुरिति।

'यस्माद्विष्टमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।
तस्मादेवोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्।।'

इति विष्णुपुराणे (३। १। ४५) ।।२।।

यदुद्देशेनाध्वरे वषट् क्रियते स वषट्कारः। **यस्मिन्यज्ञे वा वषट्क्रिया स वषट्कारः** 'यज्ञो वै विष्णुः' (तै० सं० १। ७। ४) **इति श्रुतेर्यज्ञो वषट्कारः। येन वषट्कारादिमन्त्रात्मना वा देवान्प्रीणयति स वषट्कारः। देवता वा,** 'प्रजापतिश्च वषट्कारश्च' **इति श्रुतेः।**

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु।।'

इत्यादिस्मृतेश्च।।३।। **भूतं च भव्यं च भवच्च भूतभव्यभवन्ति तेषां प्रभुः भूतभव्यभवत्प्रभुः कालभेदमनादृत्य सन्मात्रप्रतियोगि-कमैश्वर्यमस्येति प्रभुत्वम्।।४।।**

रजोगुणं समाश्रित्य विरिञ्चिरूपेण भूतानि करोतीति भूतकृत्। **तमोगुणमास्थाय स रुद्रात्मना भूतानि कृन्तति कृणोति हिनस्तीति भूतकृत्।।५।। सत्त्वगुणमधिष्ठाय भूतानि बिभर्ति पालयति धारयति पोषयतीति वा** भूतभृत् ।।६।। **प्रपञ्चरूपेण भवतीति, केवलं भवतीत्येव वा** भावः। **भवनं भावः सत्तात्मको वा।।७।।** भूतात्मा **भूतानामात्मान्तर्यामीति भूतात्मा** 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' (बृ० उ० ३। ७। ३-२२) **इति श्रुतेः।।८।। भूतानि भावयति जनयति वर्धयतीति वा भूतभावनः।।९।।14।।**

विश्रामः।।१।।

*****

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च॥15॥

भूतकृदादिभिर्गुणतन्त्रत्वं प्राप्तं प्रतिषिध्यते पूतात्मा **इति, पूत आत्मा यस्य स पूतात्मा, कर्मधारयो वा** 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० उ० ६। ११) **इति श्रुतेः। गुणोपरागः स्वेच्छातः पुरुषस्येति कल्प्यते**।।१०।।

परमश्चासावात्मा चेति परमात्मा **कार्यकारणविलक्षणो नित्यशुद्ध-बुद्धमुक्तस्वभावः**।।११।। **मुक्तानां परमा प्रकृष्टा गतिर्गन्तव्या देवता पुनरावृत्त्यसम्भवात्तद्गतस्येति** मुक्तनां परमा गतिः।

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।' (गीता ८। १६)

इति भगवद्वचनम् ।।१२।। **न व्येति नास्य व्ययो विनाशो विकारो वा विद्यत इति** 'अव्ययः', 'अजरोऽमरोऽव्ययः' **इति श्रुतेः**।।१३।। **पुरं शरीरं तस्मिन् शेते** पुरुषः।

'नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्।
व्याप्य शेते महात्मा यस्तस्मात् पुरुष उच्यते।।'

इति महाभारते। (शान्ति० २१०। ३७) **यद्वा अस्तेर्व्यत्यस्ताक्षरयोगाद् आसीत् पुरा पूर्वमेवेति विग्रहं कृत्वा व्युत्पादितः पुरुषः।** 'पूर्वमेवाहमिहासमिति तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्' **इति श्रुतेः।**

अथवा पुरुषु भूरिषु उत्कर्षशालिषु सत्त्वेषु सीदतीति, पुरूणि फलानि सनोति ददातीति वा, पुरूणि भुवनानि संहारसमये स्यति अन्तं करोतीति वा, पूर्णत्वात् पूरणाद्वा सदनाद्वा पुरुषः 'पूरणात्सदनाच्चैव ततोऽसौ पुरुषोत्तमः' इति पञ्चमवेदे (उद्योग० ७०। ११)।।१४।।

साक्षादव्यवधानेन स्वरूप बोधेन ईक्षते पश्यति सर्वमिति साक्षी 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' (पा० सू० ५। २। ९१) **इति पाणिनिवचनादिनि प्रत्ययः**।।१५।। **क्षेत्रं शरीरं जानातीति** क्षेत्रज्ञः; 'आतोऽनुपसर्गे कः'

(पा० सू० ३। २। ३) **इति कप्रत्ययः** 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' (गीता १३।२) **इति भगवद्वचनात्।**

'क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभम्।

तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३५१। ६)॥१६॥ **स एव न क्षरतीति** अक्षरः **परमात्मा। अश्नातेरश्नोतेर्वा सरप्रत्ययान्तस्य रूपमक्षर इति**॥१७॥

एवकारात् क्षेत्रज्ञाक्षरयोरभेदः परमार्थतः, 'तत्त्वमसि' (छा० उ०६।८) **इति श्रुतेः चकाराद्व्यावहारिको भेदश्च, प्रसिद्धेरप्रमाणत्वात्**॥15॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः॥

नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः॥16॥

योगः—

'ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वाणि निरुध्य मनसा सह।

एकत्वभावना योगः क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः॥'

तदवाप्यतया योगः॥१८॥ **योगं विदन्ति विचारयन्ति, जानन्ति, लभन्त इति वा योगविदस्तेषां नेता ज्ञानिनां योगक्षेमवहनादिनेति** योगविदां नेता। 'तेषां नित्याभियुक्तनां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥' (गीता ९। २२) **इति भगवद्वचनात्** ॥१९॥

प्रधानं प्रकृतिर्माया; पुरुषो जीवस्तयोरीश्वरः प्रधानपुरुषेश्वरः॥२०॥

नरस्य सिंहस्य चावयवा यस्मिन् लक्ष्यन्ते तद्वपुर्यस्य स नारसिंहवपुः॥२१॥ **यस्य वक्षसि नित्यं सति श्रीः स श्रीमान्**॥२२॥

अभिरूपाः केशा यस्य स केशवः 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' (पा० सू० ५। २। १०९) **इति वप्रत्ययः प्रशंसायाम्। यद्वा कश्च अश्च ईशश्च त्रिमूर्तयः केशास्ते यद्वशेन वर्तन्ते स केशवः केशिवधाद्वा।**

'यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि॥'
इति विष्णुपुराणे (५। १६। २३)

श्रीकृष्णं प्रति नारदवचनम्। पृषोदरादित्वाच्छब्दसाधुत्वकल्पना॥२३॥

पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः अत्र 'न निर्धारणे' (पा० सू० २। २। १०) **इति षष्ठीसमासप्रतिषेधो न भवति जात्याद्यनपेक्षया समर्थत्वात्। यत्र पुनर्जातिगुणक्रियापेक्षया पृथक्क्रिया तत्रासमर्थत्वान्निषेधः प्रवर्तते; यथा–मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः, गवां कृष्णा गौः सम्पन्नक्षीरतमा, अध्वगानां धावन् शीघ्रतम् इति। अथवा पञ्चमीसमासः; तथा च भगवद्वचनम्**—

'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥' (गीता १५।१८) ॥२४॥16॥

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः॥17॥

'असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात्।
सर्वस्य सर्वदा ज्ञानात् सर्वमेनं प्रचक्षते॥'
(महा० उद्योग ७०। ११)

इति भगवद्व्यासवचनात् सर्वः॥२५॥ **शृणाति संहारसमये संहरति संहारयति सकलाः प्रजाः इति** शर्वः॥२६॥ **निस्त्रैगुण्यतया शुद्धत्वात्** शिवः 'स ब्रह्मा स शिवः' (कै० उ० ८) **इत्यभेदोपदेशाच्छिवादिनामभिर्हरिरेव स्तूयते**॥२७॥ **स्थिरत्वात्** स्थाणुः॥२८॥ **भूतानामादिकारणत्वाद्** भूतादिः॥२९॥ **प्रलयकालेऽस्मिन् सर्वं** निधीयत **इति** निधिः। 'कर्मण्यधिकरणे च' (पा० सू० ३। ३। ९३) **इति कि प्रत्ययः स एव निधिर्विशेष्यते**— अव्ययः **अविनश्वरो निधिरित्यर्थः**॥३०॥ **स्वेच्छया समीचीनं भवनमस्येति** सम्भवः 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' (गीता ४।८) **इति भगवद्वचनात्।**

'अथ दुष्टविनाशाय साधूनां रक्षणाय च।
स्वेच्छया सम्भवाम्येवं गर्भदु:खविवर्जित:।।'

इति च ।।३१।। **सर्वेषां भोक्तृणां फलानि भावयतीति भावन: सर्वफलदातृत्वम् 'फलमत उपपत्ते:** (ब्र० सू० ३। २। ३८) **इत्यत्र प्रतिपादितम्**।।३२।। **प्रपञ्चस्याधिष्ठानत्वेन भरणात्** भर्ता।।३३।। **प्रकर्षेण महाभूतानि अस्माज्जायन्त इति** प्रभव: **प्रकृष्टो भवो जन्मास्येति वा**।।३४।। **सर्वासु क्रियासु सामर्थ्यातिशयात्** प्रभु:।।३५।। **निरुपाधिकमैश्वर्यमस्येति** ईश्वर: 'एष सर्वेश्वर:' (माण्डू० ६) **इति श्रुते:**।।३६।। ।।17।।

स्वयम्भू: शम्भुरादित्य: पुष्कराक्षो महास्वन:।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तम:।।18।।

स्वयमेव भवतीति स्वयम्भू: 'स एव स्वयमुद्बभौ' (मनु० १।७) **इति मानवं वचनम्। सर्वेषामुपरि भवति स्वयं भवतीति वा स्वयम्भू:। येषामुपरि भवति यश्चोपरि भवति तदुभयात्मना स्वयमेव भवतीति वा** 'परिभू: स्वयम्भू:' (ई० उ० ८) **इति मन्त्रवर्णात् अथवा स्वयम्भू: परमेश्वर: स्वयमेव स्वतन्त्रो भवति न परतन्त्र:** 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू:' (क० उ० २। ४। १) **इति मन्त्रवर्णात्**।।३७।। **शं सुखं भक्तानां भावयतीति** शम्भु:।।३८।। **आदित्यमण्डलान्त:स्थोहिरणमय: पुरुष:** आदित्य: **द्वादशादित्येषु विष्णुर्वा** 'आदित्यानामहं विष्णु:' (गीता १०। २१) **इत्युक्ते:। अदितेरखण्डिताया मह्या अयं पतिरिति वा** 'इयं वा अदिति:' महीं देवीं विष्णुपत्नीम्' **इति श्रुते:। यथादित्य एक एवानेकेषु जलभाजनेषु अनेकवत् प्रतिभासते, एवमनेकेषु शरीरेषु एक एवात्मानेकवत् प्रतिभासत इति आदित्यसाधर्म्याद्वा आदित्य:**।।३९।। **पुष्करेणोपमिते अक्षिणे यस्येति** पुष्कराक्ष:।।४०।। **महानूर्जित: स्वनो नादो वा श्रुतिलक्षणो यस्य स** महास्वन: 'सन्महत्' (पा० सू० २। १। ६१) **इत्यादिना समासे कृते** 'आन्महत: समानाधिकरणजातीययो:' (पा० सू० ६। ३। ४६) **इत्यात्वम्** 'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेद:' (बृ० उ० २।४।१०)

इति श्रुतेः।।४१।। आदिर्जन्म; निधनं विनाशः, तद्द्वयं यस्य न विद्यते स अनादिनिधनः।।४२।। अनन्तादिरूपेण विश्वं बिभर्तीति धाता।।४३।। कर्मणां तत्फलानां च कर्ता विधाता।।४४।। अनन्तादीनामपि धारकत्वाद् विशेषेण दधातीति वा धातुरुत्तम इति नामैकं सविशेषणं समानाधिकरण्येन; सर्वधातुभ्यः पृथिव्यादिभ्य उत्कृष्टश्चिद्धातुरित्यर्थः। धातुर्विरिञ्चेरुत्कृष्ट इति वा वैयधिकरण्येन। नामद्वयं वा; कार्यकारणप्रपञ्चधारणाच्चिदेव धातुः। उत्तमः सर्वेषामुद्गतानामतिशयेनोद्गतत्वादुत्तमः।।४५।।18।।

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः।।19।।

शब्दादिरहितत्वान्न प्रत्यक्षगम्यः, नाप्यनुमानविषयः, तद्व्याप्तलिङ्गाभावात्। नाप्युपमानसिद्धिः निर्भागत्वेन सादृश्याभावात्। नाप्यर्थापत्तिग्राह्यः, तद्विनानुपपद्यमानस्यासम्भवात्। नाप्यभावगोचरो भावत्वेन सम्मतत्वात्। अभावसाक्षित्वाच्च न षष्ठप्रमाणस्य। नापि शास्त्रप्रमाणवेद्यः प्रमाणजन्यातिशयाभावात्। यद्येवं शास्त्रयोनित्वं कथम्? उच्यते प्रमाणादिसाक्षित्वेन प्रकाशस्वरूपस्य प्रमाणाविषयत्वेऽपि अध्यस्तातद्रूपनिवर्तकत्वेन शास्त्रप्रमाणकत्वमिति अप्रमेयः साक्षि रूपत्वाद् वा।।४६।। हृषीकाणीन्द्रियाणि, तेषामीशः क्षेत्रज्ञरूपभाक्। यद्वा, इन्द्रियाणि यस्य वशे वर्तन्ते स परमात्मा हृषीकेशः यस्य वा सूर्यरूपस्य चन्द्ररूपस्य च जगत्प्रीतिकरा हृष्टाः केशा रश्मयः स हृषीकेशः; 'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्' इति श्रुतेः। पृषोदरादित्वात्साधुत्वम्। यथोक्तं मोक्षधर्मे—

'सूर्याचन्द्रमसौ शश्वदंशुभिः केशसंज्ञितैः।
बोधयन् स्वापयंश्चैव जगदुत्तिष्ठते पृथक्।।'
'बोधनात्स्वापनाच्चैव जगतो हर्षणं भवेत्।
अग्नीषोमकृतैरेवं कर्मभिः पाण्डुनन्दन।।
हृषीकेशो महेशानो वरदो लोकभावनः।।'

(महा० शान्ति० ३४२। ६६–६७)

इति।।४७।। सर्वजगत्कारणं पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभः, 'अजस्य नाभावध्येकमर्पितम्' **इति श्रुतेः। पृषोदरादित्वात्साधुत्वम्।।४८।। अमराणां प्रभुः** अमरप्रभुः।।४९।। **विश्वं कर्म क्रिया यस्य स** विश्वकर्मा। **क्रियत इति जगत्कर्म विश्वं कर्म यस्येति वा, विचित्रनिर्माणशक्तिमत्त्वाद्वा विश्वकर्मा; त्वष्टा सादृश्याद्वा।।५०।।**

मननात् मनुः। 'नान्योऽतोऽस्ति मन्ता' (बृ० उ० ३। ७। २३) **इति श्रुतेः। मन्त्रो वा प्रजापतिर्वा मनुः।।५१।। संहारसमये सर्वभूततनूकारणत्वात् त्वष्टा त्वक्षतेस्तनूकरणार्थात् तृच् प्रत्ययः।।५२।। अतिशयेन स्थूलः** स्थविष्ठः।।५३।। **पुराणः स्थविरः** 'त्वेकं ह्यस्य स्थविरस्य नाम' **इति बह्वृचाः; वयोवचनो वा स्थिरत्वाद् ध्रुवः** स्थविरो ध्रुव **इत्येकमिदं नाम सविशेषणम्।।५४।।19।।**

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः।

प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम्।।20।।

कर्मेन्द्रियैर्न गृह्यते इति अग्राह्यः 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (तै० उ० २। ९) **इति श्रुतेः।।५५।। शश्वत् सर्वेषु कालेषु भवतीति** शाश्वतः 'शाश्वतं शिवमच्युतम्' (ना० उ० १३। १) **इति श्रुतेः।।५६।।**

'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः।।'
(महा० उद्योग० ७०। ५)

इति व्यासवचनात् सच्चिदानन्दात्मकः कृष्णः। **कृष्णवर्णात्मकत्वाद्वा कृष्णः।**

'कृषामि पृथिवीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो हलः।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात्तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन।।'
इति महाभारते। (शान्ति० ३४२। ७९)।।५७।।

लोहिते अक्षिणी यस्येति लोहिताक्षः 'असावृषभो लोहिताक्षः' **इति श्रुतेः**।।५८।। **प्रलये भूतानि प्रतर्दयति हिनस्तीति** प्रतर्दनः।।५९।। **ज्ञानैश्वर्यादिगुणैः सम्पन्नः** प्रभूतः।।६०।। **ऊर्ध्वाधोमध्यभेदेन तिसृणां ककुभामपि धामेति** त्रिककुब्धाम **इत्येकमिदं नाम**।।६१।।

येन पुनाति यो वा पुनाति ऋषिर्देवता वा तत् पवित्रम् 'पुवः संज्ञायाम्' (पा० सू० ३। २। १८५) 'कर्तरि चर्षिदेवतयोः' (पा० सू० ३। २। १८६) **इति भगवत्पाणिनिस्मरणात् इत्रप्रत्ययः**।।६२।।

'अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत् पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः।।'

इति श्रीविष्णुपुराणवचनात् कल्याणरूपत्वाद्वा मङ्गलम्। परं सर्वभूतेभ्यः उत्कृष्टं ब्रह्म। मङ्गलं परम् **इत्येकमिदं नाम सविशेषणम्**।।६३।।20।।

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः।।21।।

सर्वभूतनियन्तृत्वात् ईशानः।।६४।। **प्राणान् ददाति चेष्टयतीति वा** प्राणदः 'को ह्येवान्यात् कः प्राणयात्' (तै० उ० २। ७) **इति श्रुतेः। यद्वा, प्राणान् कालात्मना द्यति खण्डयतीति प्राणदः प्राणान् दीपयति शोधयतीति वा, प्राणान् ददाति लुनातीति वा प्राणदः**।।६५।। **प्राणितीति** प्राणः **क्षेत्रज्ञः परमात्मा वा,** 'प्राणस्य प्राणम्' (बृ० उ० ४। ४। १८) **इति श्रुतेः। मुख्यप्राणो वा**।।६६।।

वृद्धतमो ज्येष्ठः 'ज्य च' (पा० सू० ५। ३। ६१) **इत्यधिकारे** 'वृद्धस्य च' (पा० सू० ५।३।६२) **इतिवृद्धशब्दस्य ज्यादेशविधानात्**।।६७।।

प्रशस्यतमः श्रेष्ठः 'प्रशस्यस्य श्रः' (पा० सू० ५। ३। ६०) **इति आदेशविधानात्।** 'प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च' (छा० उ० ५। १। १) **इति**

श्रुतेः। मुख्यप्राणो वा, 'श्रेष्ठश्च' (ब्र० सू० २।४।८) **इत्यधिकरणसिद्धत्वात्। सर्वकारणत्वाद् वा ज्येष्ठः, सर्वातिशयत्वाद् वा श्रेष्ठः**।।६८।। **ईश्वरत्वेन सर्वासां प्रजानां पतिः** प्रजापतिः।।६९।। **हिरणमयाण्डान्तर्वर्तित्वात्** हिरण्यगर्भो **ब्रह्मा विरिञ्चिः तदात्मा,** 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (ऋ० सं० १०।१२१।१) **इति श्रुतेः**।।७०।। **भूगर्भे यस्य स** भूगर्भः।।७१।।

मायाः श्रियः धवः पतिः माधवः **मधुविद्यावबोध्यत्वाद्वा माधवः।**

'मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम्।'

(महा० उद्योग० ७०। ४)

इति व्यासवचनाद् वा माधवः।।७२।। **मधुनामानमसुरं सूदितवान् इति** मधुसूदनः।

'कर्णमिश्रोद्भवं चापि मधुनाममहासुरम्।

'ब्रह्मणोऽपचितिं कुर्वन् जघान पुरुषोत्तमः।।

'तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः।

मधुसूदन इत्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम्।।'

(महा० भीष्म० ६७। १४-१६)

इति महाभारते।।७३।।21।।

द्वितीयाह्निकम्।।२।।

*****

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान्।। 22।।

सर्वशक्तिमत्तया ईश्वरः।।७४।। **विक्रमः शौर्यम्, तद्योगात्** विक्रमी।।७५।। **धनुरस्यास्तीति** धन्वी **व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः।** 'रामः शस्त्रभृतामहम्' (गीता १०। ३१) **इति भगवद्वचनात्**।।७६।। **मेधा बहुग्रन्थधारणसामर्थ्यम्, सा यस्यास्ति स** मेधावी। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (पा० सू० ५। २। १२१)

इति पाणिनि- वचनाद्विनिप्रत्ययः।।७७।। विचक्रमे जगद् विश्वं तेन विक्रमः **विना गुरुडेन पक्षिणा क्रमाद्वा।।७८।। क्रमणात्, क्रमहेतुत्वाद् वा** क्रमः, 'क्रान्ते विष्णुम्' (मनु० १२।१२१) **इति मनुवचनात्।।७९।। अविद्यमान उत्तमो यस्मात् सः** अनुत्तमः। 'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्' (ना० उ० १२। ३) **इति श्रुतेः**, 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११। ४३) **इति स्मृतेश्च।।८०।। दैत्यादिभिर्धर्षयितुं न शक्यत इति** दुराधर्षः।।८१।। **प्राणिनां पुण्यापुण्यात्मकं कर्म कृतं जानीति** कृतज्ञः। **पत्रपुष्पाद्यल्पमपि प्रयच्छतां मोक्षं ददातीति वा।।८२।। पुरुषप्रयत्नः कृतिः, क्रिया वा; सर्वात्मकत्वात्तदाधारतया वा लक्ष्यते कृत्येति** वा कृतिः।।८३।। **स्वमहिमप्रतिष्ठितत्वात्** आत्मवान्। 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७। २४। १) **इति श्रुतेः।।८४।।22।।**

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः।

अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः।।23।।

सुराणां देवानामीशः सुरेशः **सूपपदो वा राधातुः शोभनदातॄणामीशः सुरेशः।।८५।। आर्तानामार्तिहरणत्वात्** शरणम्।।८६।। **परमानन्दरूपत्वात्** शर्म।।८७।। **विश्वस्य कारणत्वात्** विश्वरेताः।।८८।। **सर्वाः प्रजा यत्सकाशादुद्भवन्ति स** प्रजाभवः।।८९।। **प्रकाशरूपत्वाद्** अहः।।९०।। **कालात्मना स्थितो विष्णुः** संवत्सर **इत्युक्तः।।९१।। व्यालवद् ग्रहीतुमशक्यत्वाद्** व्यालः।।९२।। **प्रतीतिः प्रज्ञा** प्रत्ययः 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐ० उ० ३। ५। ३) **इति श्रुतेः।।९३।। सर्वाणि दर्शनात्मकानि अक्षीणि यस्य स** सर्वदर्शनः, **सर्वात्मकत्वात्**; 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० ३। ३) 'विश्वाक्षम्' (ना० उ० १३। १) **इति श्रुतेः।।९४।।23।।**

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः।

वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः।।24।।

न जायत इति अजः 'न जातो न जनिष्यते' **इति श्रुतेः।**

'न हि जातो न जायेऽहं न जनिष्ये कदाचन।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां तस्मादहमजः स्मृतः।।'

इति महाभारते (शान्ति० ३४२। ७४)।।९५।। **सर्वेषामीश्वराणामीश्वरः** 'सर्वेश्वरः 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६) **इति श्रुतेः**।।९६।। **नित्यनिष्पन्नरूपत्वात्** सिद्धः।।९७।। **सर्ववस्तुषु संविद्रूपत्वात्, निरतिशयरूपत्वात् फलरूपत्वाद् वा** सिद्धिः। **स्वर्गादीनां विनाशित्वादफलत्वम्**।।९८।। **सर्वभूतानामादि-कारणत्वात्** सर्वादिः।।९९।। **स्वरूपसामर्थ्यान्न च्युतो न च्यवते न च्यविष्यते इति** अच्युतः, शाश्वतꣳ शिवमच्युतम्' (ना० उ० १३। १) **इति श्रुतेः। तथा च भगवद्वचनम्**— 'यस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा' इति।।१००।।

इति नाम्नां शतमाद्यं विवृतम्।

वर्षणात् सर्वकामानां धर्मो वृषः कात् तोयाद् भूमिमपादिति कपिर्वराहः, वृषरूपत्वात्कपिरूपत्वाच्च वृषाकपिः।

'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः।।'

इति महाभारते (शान्ति० ३४२। ८९)।।१०१।।

इयानिति मातुं परिच्छेत्तुं न शक्यत आत्मा यस्येति अमेयात्म।।१०२।।

सर्वसम्बन्धविनिर्गतः सर्वयोगविनिःसृतः, 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' (बृ० उ० ४। ३। १५) **इति श्रुतेः। नानाशास्त्रोक्ताद्योगादपगतत्वाद् वा** ।।१०३।।24।।

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः।।25।।

वसन्ति सर्वभूतान्यत्र, तेष्वयमपि वसतीति वा वसुः 'वसूनां पावकश्चास्मि' (गीता १०। २३) **इत्युक्तो वा वसुः**।।१०४।।

वसुशब्देन धनवाचिना प्राशस्त्यं लक्ष्यते। प्रशस्तं मनो यस्य स वसुमनाः। रागद्वेषादिभिः क्लेशैर्मदादिभिरुपक्लेशैश्च यतो न कलुषितं चित्तं ततस्तन्मनः प्रशस्तम्।।१०५।। अवितथरूपत्वात् परमात्मा सत्यः 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २।१।१) इति श्रुतेः। मूर्तामूर्तात्मकत्वाद्वा, 'सच्च त्यच्चाभवत्, (तै० उ० २।६।१) इति श्रुतेः। सदिति प्राणाः, तीत्यन्नम्, यमिति दिवाकरस्तेन प्राणान्नादित्यरूपाद्वा। सत्त्यः 'सदिति प्राणास्तीत्यन्नं यमित्यसावादित्यः' (ऐ० आ० २।१।५।६) इति श्रुतेः। सत्सु साधुत्वाद्वा सत्यः।।१०६।। सम आत्मा मनो यस्य रागद्वेषा-दिभिरदूषितः सः समात्मा सर्वभूतेषु सम एक आत्मा वा, 'सम आत्मेति विद्यात्' इति श्रुतेः।।१०७।। सर्वैरप्यर्थजातैः परिच्छिन्नः सम्मितः; सर्वैरपरिच्छिन्नोऽमित इति असम्मितः।।१०८।। सर्वकालेषु सर्वविकार-रहितत्वात् समः; मया लक्ष्म्या सह वर्तत इति वा समः।।१०९।। पूजितः स्तुतः संस्मृतो वा सर्वफलं ददाति न वृथा करोतीति अमोघः। अवितथसङ्कल्पाद्वा, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८।७।१) इति श्रुतेः।।११०।। हृदयस्थं पुण्डरीकमश्नुते व्याप्नोति तत्रोपलक्षित इति पुण्डरीकाक्षः 'यत्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थम्' इति श्रुतेः; पुण्डरीकाकारे उभे अक्षिणी अस्येति वा।।१११।। धर्मलक्षणं कर्मास्येति वृषकर्मा।।११२।। धर्मार्थमाकृतिः शरीरं यस्येति स वृषाकृतिः 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।' (गीता ४।८) इति भगवद्वचनात्।।११३।।25।।

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः।।26।।

संहारकाले प्रजाः संहरन् रोदयतीति रुद्रः। रुद्रं राति ददातीति वा रुर्दुःखं दुःखकारणं वा, द्रावयतीति वा रुद्रः; रोदनाद् द्रावणाद्वापि रुद्र इत्युच्यते,

'रुर्दुःखं दुःखहेतुं वा तद् द्रावयति यः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्।।'

इति शिवपुराणवचनात्। (संहिता ६ अ० ९। १४)।।११४।।

बहूनि शिरांसि यस्येति बहुशिराः, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' (पु० सू० १) **इति मन्त्रवर्णात्**।।११५।। **बिभर्ति लोकानिति** बभ्रुः।।११६।। **विश्वस्य कारणत्वाद्** विश्वयोनिः।।११७।।

शुचीनि श्रवांसि नामानि श्रवणीयान्यस्येति शुचिश्रवाः।।११८।। **न विद्यते मृतं मरणमस्येति** अमृतः 'अजरोऽमरः' (बृ० उ० ४। ४। २५) **इति श्रुतेः**।।११९।। **शाश्वतश्चासौ स्थाणुश्चेति** शाश्वतस्थाणुः।।१२०।। **वर आरोहोऽङ्कोऽस्येति** वरारोहः। **वरमारोहणं यस्मिन्निति वा, आरूढानां पुनरावृत्त्यसम्भवात्**, 'न च पुनरावर्तते' (छा० उ० ८। १५। १) **इति श्रुतेः**, 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम।।' (गीता १५।६)

इति भगवद्वचनात्।।१२१।। **महत्सृज्यविषयं तपो ज्ञानमस्येति** महातपाः 'यस्य ज्ञानमयं तपः' (मु० उ० १। १। ९) **इति श्रुतेः। ऐश्वर्यं प्रतापो वा तपो महदस्येति वा महातपाः**।।१२२।।26।।

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः।।27।।

सर्वत्र गच्छतीति सर्वगः, **कारणत्वेन व्याप्तत्वात् सर्वत्र**।।१२३।।

सर्वं वेत्ति विन्दतीति वा सर्ववित् भातीति भानुः, 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' (क० उ० २। २। १५) **इति श्रुतेः**। 'यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।' (गीता १५। १२) **इत्यादिस्मृतेश्च; सर्वविच्चासौ भानुश्चेति** सर्वविद्भानुः।।१२४।।

विष्वग् अव्ययं सर्वेत्यर्थे। विष्वगञ्चति पलायते दैत्यसेना यस्य रणोद्योगमात्रेणेति विष्वक्सेनः।।१२५।। **जनान् दुर्जनानर्दयति हिनस्ति, नरकादीन् गमयतीति वा** जनार्दनः **जनैः पुरुषार्थमभ्युदयनिःश्रेयसलक्षणं याच्यते इति जनार्दनः**।।१२६।। **वेदरूपत्वाद् वेदः वेदयतीति वा वेदः**,

'तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।' (गीता १०। ११)

इति भगवद्वचनात्।।१२७।। **यथावद्वेदं वेदार्थं च वेत्तीति** वेदवित्, 'वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्' (गीता १५। १५) **इति भगवद्वचनात्।**

'सर्वे वेदाः सर्ववेद्याः सशास्त्राः सर्वे यज्ञाः सर्व इज्याश्च कृष्णः।
विदुः कृष्णं ब्राह्मणास्तत्त्वतो ये तेषां राजन् सर्वयज्ञाः समाप्ताः।।

इति महाभारते।।१२८।। अव्यङ्गः **ज्ञानादिभिः परिपूर्णोऽविकल इत्युच्यते; व्यङ्गो व्यक्तिर्न विद्यत इत्यवयङ्गो वा** 'अव्यक्तोऽयम्' (गीता २। २५) **इति भगवद्वचनात्**।।१२९।। **वेदा अङ्गभूता यस्य स** वेदाङ्गः।।१३०।। **वेदान् विन्ते विचारयतीति** वेदवित्।।१३१।। **क्रान्तदर्शी** कविः **सर्वदृक्**, 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' (बृ० उ० ३।७।२३) **इत्यादि श्रुतेः**। 'कविर्मनीषी' (ई० उ० ८) **इत्यादि मन्त्रवर्णात्**।।१३२।।27।।

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः।
चतुरात्म चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः।।28।।

लोकानध्यक्षयतीति लोकाध्यक्षः **सर्वेषां लोकानां प्राधान्येनोप–द्रष्टा**।।१३३।। **लोकपालादिसुराणामध्यक्षः** सुराध्यक्षः।।१३४।। **धर्माधर्मौ साक्षादीक्षतेऽनुरूपं फलं दातुं तस्माद्** धर्माध्यक्षः।।१३५।। **कृतश्च कार्यरूपेण अकृतश्च कारणरूपेणेति** कृताकृः।।१३६।। **सर्गादिषु पृथग्विभूतयश्चतस्रः आत्मानो मूर्तयो यस्य सः** चतुरात्मा।

'ब्रह्मा दक्षादयः कालस्तथैवाखिलजन्तवः।
विभूतयो हरेरेता जगतः सृष्टिहेतवः।
विष्णोर्मन्वादयः कालः सर्वभूतानि च द्विज।
स्थितेर्निमित्तभूतस्य विष्णोरेता विभूतयः।।
रुद्रः कालोऽन्तकाद्याश्च समस्ताश्चैव जन्तवः।
चतुर्धा प्रलयायैता जनार्दनविभूतयः।।'
(विष्णु० १। २२। ३१–३३)

इति वैष्णवपुराणे।।१३७।।

'व्यूह्यात्मानं चतुर्धा वै वासुदेवादिमूर्तिभिः।
सृष्ट्यादीन् प्रकरोत्येष विश्रुतात्मा जनार्दनः।।'

इति व्यासवचनात् चतुर्व्यूहः।।१३८।। **दंष्ट्राश्चतस्रो यस्येति** चतुर्दंष्ट्रः **नृसिंहविग्रहः। यद्वा सादृश्याच्छृङ्गं दंष्ट्रेत्युच्यते,** 'चत्वारि शृङ्गाः' (ऋग्वेदे) **इति श्रुतेः**।।१३९।। **चत्वारो भुजा अस्येति** चतुर्भुजः।।१४०।।28।।

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः।।29।।

प्रकाशैकरसत्वाद् भ्राजिष्णुः।।१४१।। **भोज्यरूपतया प्रकृतिर्माया** भोजनम् इत्युच्यते।१४२।। **पुरुषरूपेण तां भुङ्क्ते इति** भोक्ता।।१४३।। **हिरण्याक्षादीन् सहते अभिभवतीति** सहिष्णुः।।१४४।। **हिरण्यगर्भरूपेण जगदादावुत्पद्यते स्वयमिति** जगदादिजः।।१४५।। **अघं न विद्यतेऽस्येति** अनघः 'अपहतपाप्मा' (छा० उ० ८। ७। १) **इति श्रुतेः**।।१४६।। **विजयते ज्ञानवैराग्यैश्वर्या-दिभिर्गुणैर्विश्वमिति** विजयः।।१४७।। **यतो जयन्त्यतिशेते सर्वभूतानि स्वभावतोऽतो** जेता।।१४८।। **विश्वं योनिर्यस्य विश्वश्चासौ योनिश्चेति वा** विश्वयोनिः।।१४९।। **पुनः पुनः शरीरेषु वसति क्षेत्रज्ञरूपेणेति** पुनर्वसुः।।१५०।।29।।

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः।
अतीन्द्रः सङ्ग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः।।30।।

इन्द्रमुपगतोऽनुजत्वेनेति उपेन्द्रः **यद्वा उपरि इन्द्रः।**

'ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति भुवि देवताः।।'
(हरि० २। १९। ४६)

इति हरिवंशे।।१५१।। **बलिं वामनरूपेण याचितवानिति वामनः।**

सम्भजनीय इति वा वामनः,

'मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।' (क० उ० २। २। ३)

इति मन्त्रवर्णात्।।१५२।। **स एव जगत्त्रयं क्रममाणः प्रांशुरभूदिति** प्रांशुः।

'तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमय रूपं दर्शयामास वै प्रभुः।।
भूः पादौ द्यौ शिरश्चास्यं चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी।'
(हरि० ३। ७१। ४३-४४)

इत्यादिविश्वरूपं दर्शयित्वा

'तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां तौ समवस्थितौ।।'
दिवमाक्रममाणस्य जानुमूले व्यवस्थितौ।।'

इति प्रांशुत्वं दर्शयति हरिवंशे (३। ७२। २९)।।१५३।। **न मोघं चेष्टितं यस्य सः** अमोघः।।१५४।। **स्मरतां स्तुवतामर्चयतां च पावनत्वात्** शुचिः 'अस्य स्पर्शश्च महान् शुचिः' **इति मन्त्रवर्णात्**।।१५५।। **बलप्रकर्ष-शालित्वात्** ऊर्जितः।।१५६।। **अतीत्येन्द्रं स्थितो ज्ञानैश्वर्यादिभिः स्वभावसिद्धैरिति** अतीन्द्रः।।१५७।। **सर्वेषां प्रतिसंहारात्** सङ्ग्रहः।।१५८।। **सृज्यरूपतया, सर्गहेतुत्वाद्वा** सर्गः।।१५९।। **एकरूपेण जन्मादिरहिततया धृत आत्मा येन स** धृतात्मा।।१६०।। **स्वेषु स्वेष्वधिकारेषु प्रजा नियमयतीति** नियमः।।१६१।। **अन्तर्यच्छतीति** यमः।।१६२।।30।।

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः।।31।।

निःश्रेयसार्थिभिर्वेदनार्हत्वाद् वेद्यः।।१६३।। **सर्वविद्यानां वेदितृत्वाद्** वैद्यः।।१६४।। **सदा आविर्भूतस्वरूपत्वात्** सदायोगी।।१६५।। **धर्मत्राणाय**

वीरान् असुरान् हन्तीति वीरहा।।१६६।। **माया विद्याया: पति:** माधव:।

'मा विद्या च हरे: प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान्।

तस्मान्माधवनामासि धव: स्वामीति शब्दित:।।' **इति हरिवंशे** (३। ८८। ४९)।।१६७।। **यथा मधु परां प्रीतिमुत्पादयति अयमपि तथेति** मधु:।।१६८।। **शब्दादिरहितत्वादिन्द्रियाणामविषय इति** अतीन्द्रिय:, 'अशब्दमस्पर्शम्' (क० उ० १। ३। १५) **इति श्रुते:**।।१६९।। **मायाविनामपि मायाकारित्वात्** महामाय:, 'मम माया दुरत्यया' (गीता ७। १४) **इति भगवद्वचनात्**।।१७०।।

जगदुत्पत्तिस्थितिलयार्थमुद्युक्तत्वात् महोत्साह:।।१७१।। **बलिनामपि बलवत्त्वात्** महाबल:।।१७२।।31।।

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युति:।
अनिर्देश्यवपु: श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्।।32।।

बुद्धिमतामपि बुद्धिमत्त्वात् महाबुद्धि:।।१७३।। **महदुत्पत्तिकारण-मविद्यालक्षणं वीर्यमस्येति** महावीर्य:।।१७४।। **महती शक्ति: सामर्थ्यमस्येति** महाशक्ति:।।१७५।। **महती द्युतिर्बाह्या- भ्यन्तरा च अस्येति** महाद्युति:, 'स्वयंज्योति:, (बृ० उ० ४। ३। ९) 'ज्योतिषां ज्योति:' (बृ० उ० ४। ४। १६) **इत्यादि श्रुते:**।।१७६।।

इदं तदिति निर्देष्टुं यन्न शक्यते परस्मै स्वसंवेद्यत्वात्तदनिर्देश्यं वपुरस्येति अनिर्देश्यवपु:।।१७७।। **ऐश्वर्यलक्षणा समग्रा श्रीर्यस्य स:** श्रीमान्।।१७८।। **सर्वै: प्राणिभिरमेया बुद्धिरात्मा यस्य स:** अमेयात्मा।।१७९।। **महान्तमद्रिं गिरिं मन्दरं गोवर्धनं च अमृतमथने गोरक्षणे च धृतवानिति** महाद्रिधृक्; **षान्तोऽयम्**।।१८०।।32।।

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवास: सतां गति:।
अनिरुद्ध: सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पति:।।33।।

महानिष्वास इषुक्षेपो यस्य स महेष्वासः।।१८१।। **एकार्णवाप्लुतां देवीं महीं च बभारेति** महीभर्ता।।१८२।। **यस्य वक्षस्यनपायिनी श्रीर्वसति सः** श्रीनिवास।।१८३।। **सतां वैदिकानां साधूनां पुरुषार्थसाधनहेतुः** सतां गतिः।।१८४।। **न केनापि प्रादुर्भावेषु निरुद्ध इति** अनिरुद्धः।।१८५।। **सुरानानन्दयतीति** सुरानन्दः।।१८६।।

'नष्टां वै धरणीं पूर्वमविन्दद्यद्गुहागताम्।
गोविन्द इति तेनाहं देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः
(महा० शान्ति० ३४२। ७०)

इति मोक्षधर्मवचनात् गोविन्दः।

'अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः।
गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम्।।'
(हरि० २। १९। ४५)

इति।

'गौरेषा तु यतो वाणी तां च विन्दयते भवान्।
गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान्।।'

इति च हरिवंशे (३। ८८। ५०)।।१८७।।

गौर्वाणी तां विन्दतीति गोविदः तेषां पतिर्विशेषेणेति गोविदां पतिः।।१८८।।33।।

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः।।34।।

तेजस्विनामपि तेजस्त्वात् मरीचिः 'तेजस्तेजस्विनामहम्' (गीता १०।३६) **इति भगवद्वचनात्**।।१८९।। **स्वाधिकारात्प्रमाद्यतीः प्रजा दमयितुं शीलमस्य वैवस्वतादिरूपेणेति** दमनः।।१९०।। **अहं स इति तादात्म्यभाविनः संसारभयं हन्तीति** हंसः। **पृषोदरादित्वाच्छब्दसाधुत्वम्। हन्ति गच्छति सर्वशरीरेष्विति वा हंसः** 'हꣳसः शुचिषत्' (क० उ० २।५।२) **इति मन्त्रवर्णात्**।।१९१।।

शोभनधर्माधर्मरूपपर्णत्वात् सुपर्णः, 'द्वा सुपर्णा' (मु० उ० ३।१।१।) **इति मन्त्रवर्णात्। शोभनं पर्णं यस्येति वा सुपर्णः** 'सुपर्णः पततामस्मि' **इति ईश्वरवचनात्।।**१९२।। **भुजेन गच्छतामुत्तमो** भुजगोत्तमः।।१९३।। **हिरण्यमिव कल्याणी नाभिरस्येति** हिरण्यनाभः; **हितरमणीयनाभित्वाद्वा हिरण्यनाभः।।**१९४।। **वदरिकाश्रमे नरनारायणरूपेण शोभनं तपश्चरतीति** सुतपाः 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः।' (ब्रह्म० १३०। १८) **इति स्मृतेः।।**१९५।। **पद्ममिव सुवर्तुला नाभिरस्येति, हृदयपद्मस्य नाभौ प्रकाशनाद्वा** पद्मनाभः **पृषोदरादित्वात्सधुत्वम्।।**१९६।। **प्रजानां पतिः पिता** प्रजापतिः।।१९७।।34।।

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा।।35।।

मृत्युर्विनाशस्तद्धेतुर्वास्य न विद्यते इति अमृत्युः।।१९८।। **प्राणिनां कृताकृतं सर्वं पश्यति स्वाभाविकेन बोधेनेति** सर्वदृक्।।१९९।। **हिनस्तीति** सिंहः। **पृषोदरादित्वात् साधुत्वम्।।**२००।।

इति नाम्नां द्वितीयं शतं विवृतम्।

कर्मफलैः पुरुषान् सन्धत्त इति सन्धाता।।२०१।। **फलभोक्ता च स एवेति** सन्धिमान्।।२०२।। **सदैकरूपत्वात्** स्थिरः।।२०३।। **अजति गच्छति क्षिपति इति वा** अजः।।२०४।। **मर्षितुं सोढुं दानवादिभिर्न शक्यते इति** दुर्मर्षणः।।२०५।। **श्रुतिस्मृत्यादिभिः सर्वेषामनुशिष्टिं करोतीति** शास्ता।।२०६।। **विशेषेण श्रुतो येन सत्यज्ञानादिलक्षणः आत्मातो** विश्रुतात्मा।।२०७।। **सुरारीणां निहन्तृत्वात्** सुरारिहा।।२०८।।35।।

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः।।36।।

सर्वविद्यानामुपदेष्टृत्वात्सर्वेषां जनकत्वाद्वा गुरुः।।२०९।।

विरिञ्च्यादीनामपि ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकत्वाद् गुरुतमः, 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्' (श्वे० उ० ६। १८) **इति मन्त्रवर्णात्**।।२१०।। धाम **ज्योतिः**, 'नारायणपरो ज्योतिः' (ना० उ० १३। १) **इति मन्त्रवर्णात्। सर्वकामानामास्पदत्वाद्वा धाम**, 'परमं ब्रह्म परं धाम' (बृ० उ० २। ३। ६) **इति श्रुतेः**।।२११।। **सत्यवचनधर्मरूपत्वात्** सत्यः 'तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति' **इति श्रुतेः, सत्यस्य सत्यमिति वा**, 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' (बृ० उ०२।३।६) **इति श्रुतेः**।।२१२।। **सत्यः अवितथः पराक्रमो यस्य सः** सत्यपराक्रमः।।२१३।। **निमीलिते यतो नेत्रे योगनिद्रारतस्य अतो** निमिषः।।२१४।। **नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात्** अनिमिषः; **मत्स्यरूपतया वा आत्मरूपतया वा अनिमिषः**।।२१५।। **भूततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां स्रजं नित्यं बिभर्तीति** स्रग्वी।।२१६।। **वाचो विद्यायाः पतिः वाचस्पतिः; सर्वार्थविषया धीर्बुद्धिरस्येत्युदारधीः** वाचस्पतिरुदारधीः **इत्येकं नाम**।।२१७।।36।।

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः।

सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्।।37।।

अग्रं प्रकृष्टं पदं नयति मुमुक्षूनिति अग्रणीः।।२१८।। **भूतग्रामस्य नेतृत्वाद्** ग्रामणीः।।२१९।। **श्री कान्तिः सर्वातिशायिन्यस्येति** श्रीमान्।।२२०।। **प्रमाणानुग्राहकोऽभेदकारकस्तर्को** न्यायः।।२२१।। **जगद्यन्त्रनिर्वाहको** नेता।।२२२।। **श्वसनरूपेण भूतानि चेष्टयतीति** समीरणः।।२२३।। **सहस्राणि मूर्धानोऽस्येति** सहस्रमूर्धा।।२२४।। **विश्वस्यात्मा** विश्वात्मा।।२२५।। **सहस्राण्यक्षीण्यक्षाणि वा यस्य स** सहस्राक्षः।।२२६।। **सहस्राणि पादा अस्येति** सहस्रपात्। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रापात्' (पु० सू० १) **इति श्रुतेः**।।२२७।।37।।

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः।

अहःसंवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः।।38।।

आवर्तयितुं संसारचक्रं शीलमस्येति आवर्तनः ॥२२८॥ **संसारबन्धान्निवृत्त आत्मास्वरूपमस्येति** निवृत्तात्मा ॥२२९॥ **आच्छादिकया अविद्यया संवृतत्वात्** संवृतः ॥२३०॥ **सम्यक् प्रमर्दयतीति रुद्रकालाद्याभिर्विभूतिरिति** सम्प्रमर्दनः ॥२३१॥ **सम्यगह्नां प्रवर्तनात् सूर्यः** अहःसंवर्तकः ॥२३२॥ **हविर्वहनात्** वह्निः ॥२३३॥ **अनिलयः** अनिलः, **अनादित्वाद् अनिलः अनादानाद्वा, अननाद्वा** अनिलः ॥२३४॥ **शेषदिग्गजादिरूपेण वराहरूपेण च धरणीं धत्त इति** धरणीधरः ॥२३५॥38॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग् विश्वभुग् विभुः।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः॥39॥

शोभनः प्रसादो यस्यापकारवतामपि शिशुपालादीनां मोक्षप्रदातृत्वादिति सुप्रसादः ॥२३६॥ **रजस्तमोभ्यामकलुषि आत्मान्तकरणमस्येति** प्रसन्नात्मा। **करुणार्द्रस्वभावत्वाद्वा, यद्वा प्रसन्नस्वभावः कारुणिक इत्यर्थः अवाप्तसर्वकामत्वाद्वा** ॥२३७॥

विश्वं धृष्णोतीति विश्वधृक्। **ञिधृषा प्रागल्भ्ये** ॥२३८॥ **विश्वं भुङ्क्ते भुनक्ति पालयतीति वा** विश्वभुक् ॥२३९॥ **हिरण्यगर्भादिरूपेण विविधं भवतीति** विभुः, 'नित्यं विभुम्' (मु० उ० १।५।६) **इति मन्त्रवर्णात्** ॥२४०॥ **सत्करोति पूजयतीति** सत्कर्ता ॥२४१॥ **पूजितैरपि पूजतिः** सत्कृतः ॥२४२॥ **न्यायप्रवृत्ततया** साधुः; **साध्यतीति वा साध्यभेदान्, उपादानात् साध्यमात्रसाधको वा** ॥२४३॥ **जनान् संहारसमये अपहनुते अपनयतीति** जह्नुः **जहात्यविदुषो भक्तान्नयति परम्पदमिति वा** ॥२४४॥

नर आत्मा, ततो जातान्याकाशादीनि नाराणि कार्याणि तानि अयं कारणात्मना व्याप्नोति, अतश्च तान्ययनमस्येति नारायणः-

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥'

(ना० उ० १३। १-२)

इति मन्त्रवर्णात्।

'नराज्जातानि तत्त्वानि नारायणीति ततो विदुः।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः॥'

इति महाभारते।

नाराणां जीवानामयनत्वात्प्रलय इति वा नारायणः 'यत्प्रयन्त्य–भिसंविशन्ति' (तै० उ० ३।१) **इति श्रुतेः।** 'नाराणामयनं यस्मात्तस्मान्नारायणः स्मृतः' **इति ब्रह्मवैवर्तात्**

'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥' (मनु० १। १०)

इति मनुवचनाद् वा नारायणः।

'नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यः संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः।
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽस्तरागा उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः॥'

इति श्रीनारसिंहपुराणे॥२४५॥

'नयतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः।' **इति व्यासवचनम्**॥२४६।39॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥40॥

यस्मिन् संख्या नामरूपभेदादिः न विद्यत इति असंख्येयः॥२४७॥ **अप्रमेय आत्मा स्वरूपमस्येति** अप्रमेयात्मा॥२४८॥ **अतिशेते सर्वमतो** विशिष्टः॥२४९॥ **शिष्टं शासनं तत् करोतीति** शिष्टकृत्; **शिष्टान् करोति पालयतीति वा। सामान्यवचनो धातुर्विशेषवचनो दृष्टः कुरु काष्ठानीत्याहरणे यथा, तद्वदिति वा शिष्टकृत्**॥२५०॥ **निरञ्जनः** शुचिः॥२५१॥ **सिद्धो निर्वृत्तः अर्थ्यमानोऽर्थोऽस्येति** सिद्धार्थः 'सत्यकामः' (छा० उ० ८। ७। १) **इति श्रुतेः**॥२५२॥ **सिद्धो निष्पन्नः सङ्कल्पोऽस्येति** सिद्धसङ्कल्पः, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८। ७। १) **इति श्रुतेः**॥२५३॥ **सिद्धिं फलं कर्तृभ्यः स्वाधिकारानुरूपतो ददातीति** सिद्धिदः॥२५४॥ **सिद्धेः क्रियायाः साधकत्वात्** सिद्धिसाधनः॥२५५।40॥

विश्रामः ॥२॥

*****

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः।।41।।

वृषो धर्मः पुण्यम्, तदेवाहः प्रकाशसाधर्म्यात् द्वादशाहप्रभृतिर्वृषाहः; सोऽस्यास्तीति वृषाही। वृषाह इत्यत्र 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (पा० सू० ५।४।९१) **इति टच् प्रत्ययः समासान्तः।।२५६।। वर्षत्येष भक्तेभ्यः कामानिति** वृषभः।।२५७।। विष्णुः 'विष्णुर्विक्रमणात्' (महा० उद्योग० ७०। १३) **इति व्यासोक्तेः।।२५८।। वृषरूपाणि सोपानपर्वाण्याहुः परं धामारुरुक्षोरित्यतो** वृषपर्वा।।२५९।। **प्रजावर्षतीव उदरमस्येति** वृषोदरः।।२६०।। **वर्धयतीति** वर्धनः।।२६१।। **प्रपञ्चरूपेण वर्धत इति** वर्धमानः।।२६२।। **इत्थं वर्धमानोऽपि पृथगेव तिष्ठतीति** विविक्तः।।२६३।। **श्रुतयः सागर इवात्र निधीयन्ते इति** श्रुतिसागरः।।२६४।।41।।

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः।।42।।

शोभना भुजा जगद्रक्षाकरा अस्येति सुभुजः।।२६५।। **पृथिव्यादीन्यपि लोकधारकाण्यन्यैर्धारयितुमशक्यानि धारयन् न केनचिद् धारयितुं शक्य इति** दुर्धरः, **दुःखेन ध्यानसमये मुमुक्षुभिर्हृदये धारयत इति वा दुर्धरः**।।२६६।। **यतो निःसृता ब्रह्ममयी वाक् तस्माद्** वाग्मी।।२६७।। **महांश्चासाविन्द्रश्चेति** महेन्द्रः, **ईश्वराणामपीश्वरः।।२६८।। वसु धनं ददातीति** वसुदः 'अन्नादो वसुदानः' (बृ० उ० ४। ४। २४) **इति श्रुतेः।।२६९।। दीयमानं तद् वस्वपि स एवेति वा** वसुः **आच्छादयत्यात्मस्वरूपं माययेति वा वसुः; अन्तरिक्ष एव वसति नान्यत्रेति असाधारणेन वसनेन वायुर्वा वसुः,** 'वसुरन्तरिक्षसत्' (क० उ० २। ५। २) **इति श्रुतेः।।२७०।। एकं रूपमस्य न विद्यत इति** नैकरूपः 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृ० उ० २। ५। १९) **इति श्रुतेः।** 'ज्योतींषि विष्णुः' (विष्णु० २। १२। ३८) **इत्यादिस्मृतेश्च।।२७१।। बृहन्महद् वराहादिरूपमस्येति** बृहद्रूपः।।२७२।। **शिपयः पशवः, तेषु विशति प्रतितिष्ठति यज्ञरूपेणेति** शिपिविष्टः,

यज्ञमूर्तिः 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति (तै० सं० १। ७। ४) **इति श्रुतेः। शिपयो रश्मयस्तेषु निविष्ट इति वा।**

'शैत्याच्छयनयोगाच्च शीति वारि प्रचक्षते।
तत्पानाद् रक्षणाच्चैव शिपयो रश्मयो मताः।।'
तेषु प्रवेशाद् विश्वेशः शिपिविष्ट इहोच्यते।।२७३।।'

सर्वेषां प्रकाशनशीलत्वात् प्रकाशनः।।२७४।।42।।

तृतीयाह्निकम्।।३।।

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः।।43।।

ओजः प्राणबलम्; तेजः शौर्यादयो गुणाः; द्युतिर्दीप्तिः, ताः धारयतीति ओजस्तेजोद्युतिधरः। **अथवा,** ओजस्तेज **इति नामद्वयम्,** 'बलं बलवतां चाहम्' (गीता ७। ११) 'तेजस्तेजस्विनामहम्' (गीता ७। १०) **इति भगवद्वचनात्। द्युतिं ज्ञानलक्षणां दीप्तिं धारयतीति** द्युतिधरः।।२७५।।

प्रकाशस्वरूप आत्मा यस्य स प्रकाशात्मा।।२७६।। **सवित्रादिविभूतिभिः विश्वं प्रतापयतीति** प्रतापनः।।२७७।। **धर्मज्ञानवैराग्यादिभिरुपेतत्वाद्** ऋद्धः।।२७८।। **स्पष्टमुदात्तम् ओङ्कारलक्षणमक्षरमस्येति** स्पष्टाक्षरः।।२७९।।

ऋग्यजुःसामलक्षणो मन्त्रः; **मन्त्रबोध्यत्वाद् वा मन्त्रः**।।२८०।। **संसारतापतिग्मांशुतापतापितचेतसां चन्द्रांशुरिवाह्लादकरत्वात्** चन्द्रांशुः।।२८१।। **भास्करद्युतिसाधर्म्याद्** भास्करद्युतिः।।२८२।।43।।

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः।।44।।

मथ्यमाने पयोनिधावमृतांशोश्चन्द्रस्य उद्भवो यस्मात्सः अमृतांशूद्भवः।।२८३।। **भातीति** भानुः 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' (क० उ० २। ५। १५) **इति श्रुतेः**।।२८४।। **शश इव बिन्दुर्लाञ्छनमस्येति शशबिन्दुश्चन्द्रः तद्वत् प्रजाः पुष्णातीति** शशबिन्दुः। 'पुष्णामि चौषधीः

सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः' (गीता १५। १३) **इति भगवद्वचनात्**।।२८५।। **सुराणां देवानां शोभनदातॄणां चेश्वरः** सुरेश्वरः।।२८६।। **संसाररोगभेषजत्वाद्** औषधम्।।२८७।। **जगतां समुत्तारणहेतुत्वादसम्भेदकारणत्वाद् वा सेतुवद्वर्णाश्रमादीनां** जगतः सेतुः, 'एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसम्भेदाय' (बृ० उ० ४। ४। २२) **इति श्रुतेः**।।२८८।। **सत्या अवितथा धर्मा ज्ञानादयो गुणाः पराक्रमश्च यस्य सः** सत्यधर्मपराक्रमः।।२८९।।44।।

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः।
कामहा कामकृत् कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः।।45।।

भूतभव्यभवतां भूतग्रामाणां नाथः, तैर्याच्यते तानुपतपति तेषामीष्टे शास्तीति वा भूतभव्यभवन्नाथः।।२९०।। **पवन इति** पवनः, 'पवनः पवतामस्मि' (गीता १०। ३१) **इति भगवद्वचनात्**।।२९१।। **पावयतीति** पावनः। 'भीषास्माद्वातः पवते' (तै० उ० २। ८) **इति श्रुतेः**।।२९२।। **अनान् प्राणान् आत्मत्वेन लातीति जीवः** अनलः; **णलतेर्गन्धवाचिनो नञ्पूर्वाद् वा** 'अगन्धमरसम्' **इति श्रुतेः; न अलं 'पर्याप्तमस्य विद्यत इति वानलः**।।२९३।। **कामान् हन्ति मुमुक्षूणां भक्तानां हिंसकानां चेति** कामहा।।२९४।। **सात्त्विकानां कामान् करोतीति** कामकृत्; **कामः प्रद्युम्नः तस्य जनकत्वाद् वा**।।२९५।। **अभिरूपतमः** कान्तः।।२९६।। काम्यते **पुरुषार्थाभिकाङ्क्षिभिरिति** कामः।।२९७।। **भक्तेभ्यः कामान् प्रकर्षेण ददातीति** कामप्रदः।।२९८।। **प्रकर्षेण भवनात्** प्रभुः।।२९९।।45।।

युगादिकृद् युगावर्तो नैकमायो महाशनः।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित्।।46।।

युगादेः कालभेदस्य कर्तृत्वाद्। युगादिकृत्; **युगानामादिमारम्भ करोतीति वा**।।३००।।

इति नाम्नां तृतीयं शतं विवृतम्।

युगानि कृतादीन्यावर्तयति कालात्मनेति युगावर्तः।।३०१।। **एका माया न विद्यते बह्वीर्माया वहतीति** नैकमायाः। 'नलोपो नञः'

(पा० सू० ६।३।७३) इति नकारलोपो न भवति, अकारानुबन्धरहितस्यापि नकारस्य प्रतिषेधवाचिनो विद्यमानत्वात्।।३०२।। महदशनमस्येति महाशनः। कल्पान्ते सर्वग्रसनात्।।३०३।। सर्वेषां बुद्धीन्द्रियाणामगम्यः अदृश्यः।।३०४।।

स्थूलरूपेण व्यक्तं स्वरूपमस्येति व्यक्तरूपः; स्वयंप्रकाशमानत्वाद् योगिनां व्यक्तरूप इति वा।।३०५।। सुरारीणां सहस्राणि युद्धे जयतीति सहस्रजित्।।३०६।। सर्वाणि भूतानि युद्धक्रीडादिषु सर्वत्राचिन्त्यशक्तितया जयतीति अनन्तजित्।।३०७।।46।।

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः।।47।।

परमानन्दात्मकत्वेन प्रिय इष्टः, यज्ञेन पूजित इति वा इष्टः।।३०८।। सर्वेषामन्तर्यामित्वेन अविशिष्टः।।३०९।। शिष्टानां विदुषामिष्टः शिष्टेष्टः; शिष्टा इष्टा अस्येति वा, 'प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।' (गीता ७। १७) इति भगवद्वचनात्; शिष्टैरिष्टः पूजित इति वा शिष्टेष्टः।।३१०।। शिखण्डः कलापोऽलङ्कारोऽस्येति शिखण्डी यतो गोपवेषधरः।।३११।। नह्यति भूतानि माययातो नहुषः, णह् बन्धने।।३१२।। कामानां वर्षणाद् वृषः धर्मः 'वृषो हि भगवान् धर्मः स्मृतो लोकेषु भारत। नैघण्टुकपदाख्यानैर्विद्धि मां वृषमुत्तमम्।।' इति महाभारते (शान्ति० ३४२।८८)।।३१३।। साधूनां क्रोधं हन्तीति क्रोधहा। असाधुषु क्रोधं करोतीति क्रोधकृत्।।३१४।। क्रियत इति कर्म जगत्तस्य कर्ता 'यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वै तत् कर्म स वेदितव्यः' (कौ० उ० ४। १८) इति श्रुतेः। क्रोधकृतां दैत्यादीनां कर्ता छेदक इत्येकं वा नाम।।३१५।। विश्वेषामालम्बनत्वेन, विश्वे बाहवोऽस्येति विश्वतो बाहवोऽस्येति वा 'विश्वबाहुः विश्वतोबाहुः' (श्वे० उ० ३। ३) इति श्रुतेः।।३१६।। महीं पूजां धरणीं वा धरतीति महीधरः।।३१७।।47।।

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः।।48।।

षड्भावविकाररहितत्वाद् अच्युतः 'शाश्वतश्शिवमच्युतम्' (ना० उ० १३।१) **इति श्रुतेः**।।३१८।। **जगदुत्पत्त्यादिकर्मभिः प्रख्यातः** प्रथितः।।३१९।। **सूत्रात्मना प्रजाः प्राणयतीति** प्राणः 'प्राणो वा अहमस्मि' **इति बह्वृचाः**।।३२०।।

सुराणामसुराणां च प्राणं बलं ददाति द्यति वेति प्राणदः।।३२१।।

अदित्यां कश्यपाद् वासवस्यानुजो जात इति वासवानुजः।।३२२।।

आपो यत्र निधीयन्ते सः अपां निधिः, 'सरसामस्मि सागरः' (गीता १०। २४) **इति भगवद्वचनात्**।।३२३।। **अधितिष्ठन्ति भूतानि उपादानकारणत्वेन ब्रह्मेति** अधिष्ठानम् 'मत्स्थानि सर्वभूतानि' (गीता ९।४) **इति भगवद्वचनात्**।।३२४।। **अधिकारिभ्यः कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छन्न प्रमाद्यतीति** अप्रमत्तः।।३२५।। **स्वे महिम्नि स्थितः** प्रतिष्ठितः, 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७। २४। १) **इति श्रुतेः**।।३२६।।48।।

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः।।49।।

स्कन्दत्यमृतरूपेण गच्छति वायुरूपेण शोषयतीति वा स्कन्दः।।३२७।। **स्कन्दं धर्मपथं धारयतीति** स्कन्दधरः।।३२८।। **धुरं वहति समस्तभूतजन्मादि-लक्षणामिति** धुर्यः।।३२९।। **अभिमतान्वरान्ददातीति, वरं गां दक्षिणां ददाति यजमानरूपेणेति वा** वरदः 'गौर्वै वरः' **इति श्रुतेः**।।३३०।। **मरुतः सप्त आवहादीन् वाहयतीति** वायुवाहनः।।३३१।। **वसति वासयति आच्छादयति सर्वमिति वा वासुः, दीव्यति क्रीडते विजिगीषते व्यवहरति द्योतते स्तूयते गच्छतीति वा देवः, वासुश्चासौ देवश्चेति** वासुदेवः।

'छादयामि जगत् सर्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततः स्मृतः।।'
(महा० शान्ति० ३४१। ४१)

'वासनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः।
वासुदेवस्ततो वेद्यः.........................॥'

इति उद्योगपर्वणि (७०। ३)।

'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते॥' (१। २। १२)

'सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः॥' (६। ५। ८०।

इति च विष्णुपुराणे॥३३२॥

'बृहन्तो भानवो यस्य चन्द्रसूर्यादिगामिनः।
तैर्विश्वं भासयति यः स बृहद्भानुरुच्यते॥'॥३३३॥ **आदिः कारणम्, स चासौ देवश्चेति** आदिदेवः **द्योतनादिगुणवान् देवः**॥३३४॥ **सुरशत्रूणां पुराणां दारणात्** पुरन्दरः 'वाचं यमपुरन्दरौ च' (पा० सू० ६।३।६९) **इति पाणिनिना निपातनात्**॥३३५॥49॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः॥50॥

शोकादिषड्डूर्मिवर्जितः अशोकः॥३३६॥ **संसारसागरात्तारयतीति** तारणः॥३३७॥ **गर्भजन्मजरामृत्युलक्षणाद् भयात्तारयतीति** तारः॥३३८॥ **विक्रमणात्** शूरः॥३३९॥ **शूरस्यापत्यं वसुदेवस्य सुतः** शौरिः॥३४०॥ **जनानां जन्तूनामीश्वरो** जनेश्वरः॥३४१॥ **आत्मत्वेन हि सर्वेषाम्** अनुकूलः, **न हि स्वस्मिन् प्रातिकूल्यं स्वयमाचरति**॥३४२॥ **धर्मत्राणाय शतमावर्तनानि प्रादुर्भावा अस्येति** शतावर्तः **नाडीशते प्राणरूपेण वर्तत इति वा**॥३४३॥ **पद्मं हस्ते विद्यते इति** पद्मी॥३४४॥ **पद्मनिभे ईक्षणे दृशावस्येति** पद्मनिभेक्षणः॥३४५॥50॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः॥51॥

पद्मस्य नाभौ मध्ये कर्णिकायां स्थित इति पद्मनाभः।।३४६।। **अरविन्दसदृशे अक्षिणी अस्येति** अरविन्दाक्षः।।३४७।। **पद्मस्य हृदयाख्यस्य मध्ये उपास्यत्वात्** पद्मगर्भः।।३४८।। **पोषयन्नन्नरूपेण प्राणरूपेण वा शरीरिणां शरीराणि धारयतीति** शरीरभृत्। **स्वमायया शरीराणि बिभर्तीति वा**।।३४९।। **महती ऋद्धिर्विभूतिरस्येति** महर्द्धिः।।३५०।। **प्रपञ्चरूपेण वर्तमानत्वाद्** ऋद्धः।।३५१।। **वृद्धः पुरातन आत्मा यस्येति** वृद्धात्मा।।३५२।। **महती अक्षिणी महान्त्यक्षीणि वा अस्येति** महाक्षः।।३५३।। **गरुडाङ्को ध्वजो यस्येति** गरुडध्वजः।।३५४।।51।।

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः।

सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः।।52।।

तुलोपमानमस्य न विद्यत इति अतुलः, 'न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः' (श्वे० उ० ४। १९) **इति श्रुतेः**। 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११। ४३) **इति स्मृतेश्च**।।३५५।। **शराः शरीराणि शीर्यमाणत्वात्तेषु प्रत्यगात्मतया भातीति** शरभः।।३५६।। **बिभेत्यस्मात्सर्वमिति** भीमः। 'भीमादयोऽपादाने' (पा० सू० ३। ४। ७४) **इति पाणिनिस्मृतेः सन्मार्गवर्तिनाम् अभीमः इति वा**।।३५७।। **सृष्टिस्थितिसंहारसमयवित्, षट्समयाञ्जानातीति वा** समयज्ञः। **सर्वभूतेषु समत्वं यजनं साध्वस्येति वा**, 'समत्वमाराधनमच्युतस्य' (विष्णु० १।१७।९०) **इति प्रह्लादवचनात्**।।३५८।। **यज्ञेषु हविर्भागं हरतीति** हविर्हरिः, 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' (गीता ९। २४) **इति भगवद्वचनात्। अथवा हूयते हविषेति हविः**, 'अबध्नन् पुरुषं पशुम्' (पु० सू० १५) **इति हविष्ट्वं श्रूयते। स्मृतिमात्रेण पुंसां पापं संसारं वा हरतीति, हरिद्वर्णत्वाद् वा हरिः।**

'हराम्यघं च स्मर्तृणां हविर्भागं क्रतुष्वहम्।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः।।'

इति भगवद्वचनात्।।३५९।। **सर्वैर्लक्षणैः प्रमाणैर्लक्षणं ज्ञानं जायते यत्तद्विनिर्दिष्टं सर्वलक्षणलक्षणम्, तत्र साधुः** सर्वलक्षणलक्षण्यः, **तस्यैव**

परमार्थत्वात्।।३६०।। **लक्ष्मीरस्य वक्षसि नित्यं वसतीति** लक्ष्मीवान्।।३६१।। **समितिं युद्धं जयतीति** समितिञ्जयः।।३६२।।52।।

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः।।53।।

विगतः क्षरो नाशो यस्यासौ विक्षरः।।३६३।। **स्वच्छन्दतया रोहितां मूर्तिं मत्स्यविशेषमूर्तिं वा वहन्** रोहितः।।३६४।। **मुमुक्षवस्तं देवं मार्गयन्ति इति** मार्गः; **परमानन्दो येन प्राप्यते स मार्ग इति वा**।।३६५।। **उपादानं निमित्तं च कारणं स एवेति** हेतुः।।३६६।। **दमादिसाधनेनोदारोत्कृष्टा मतिर्या तया गम्यत इति** दामोदरः, 'दमाद्दामोदरो विभुः' **इति महाभारते** (उद्योग० ७०। ८)। **यशोदया दाम्नोदरे बद्ध इति वा दामोदरः,**

'ददर्श चाल्पदन्तास्यं स्मितहासं च बालकम्।
तयोर्मध्यगतं बद्धं दाम्ना गाढं तथोदरे।
ततश्च दामोदरतां स ययौ दामबन्धनात्।।'
(ब्रह्म० ७६। १३-१४)

इति ब्रह्मपुराणे।

'दामानि लोकनामानि तानि यस्योदरान्तरे।
तेन दामोदरो देवः श्रीधरः श्रीसमाश्रितः।।'

इतिव्यासवचनाद् वा दामोदरः।।३६७।। **सर्वानभिभवति क्षमत इति वा** सहः।।३६८।। **महीं गिरिरूपेण धरतीति** महीधरः, 'वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च' (विष्णु० २। १२। ३८) **इति पराशरोक्तेः**।।३६९।। **स्वेच्छया धारयन् देहं महान्ति उत्कृष्टानि भोजनानि भागजन्यानि भुङ्क्ते इति** महाभागः। **महान् भागः-भाग्यमस्यावतारेषु इति वा महाभागः**।।३७०।। **वेगो जवस्तद्वान्** वेगवान्, 'अनेजदेकं मनसो जवीयः' (ई० उ० ४) **इति श्रुतेः**।।३७१।। **संहारसमये विश्वमश्नातीति** अमिताशनः।।३७२।।53।।

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः॥54॥

प्रपञ्चोत्पत्त्युपादानकारणत्वात् उद्भवः, **उद्गतो भवात्संसारादिति वा** ॥३७३॥ **सर्गकाले प्रकृतिं पुरुषं च प्रविश्य क्षोभयामासेति** क्षोभणः।

'प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
प्रविश्य क्षोभयामास सर्गकाले व्ययाव्ययौ॥'

इति विष्णुपुराणे (१। २। २९)॥३७४॥ **यतो दीव्यति क्रीडति सर्गादिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्मात्** देवः 'एको देवः' (श्वे० उ० ६। ११) **इति मन्त्रवर्णात्**॥३७५॥ **श्रीर्विभूतिर्यस्योदरान्तरे जगद्रूपा यस्य गर्भे स्थिता स** श्रीगर्भः॥३७६॥ **परमश्चासावीशनशीलश्चेति** परमेश्वरः।

'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।' (गीता १३। २७) **इति भगवद्वचनात्**॥३७७॥ **जगदुत्पत्तौ साधकतमं** करणम्॥३७८॥ **उपादानं निमित्तं च** कारणम्॥३७९॥ कर्ता **स्वतन्त्रः**॥३८०॥ **विचित्रं भुवनं क्रियते इति** विकर्ता **स एव भगवान् विष्णुः**॥३८१॥ **स्वरूपं सामर्थ्यं चेष्टितं वा तस्य ज्ञातुं न शक्यत इति** गहनः॥३८२॥

गूहते संवृणोति स्वरूपादि निजमाययेति गुहः।

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृत।' (गीता ७। २५)

इति भगवद्वचनात्॥३८३॥54॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः॥55॥

संविन्मात्रास्वरूपत्वात् व्यवसायः॥३८४॥ **यस्मिन् व्यवस्थितिः सर्वस्येति** व्यवस्थानः; **लोकपालाद्यधिकारजरायुजाण्डजोद्भिज्जब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यशूद्रावान्तरवर्णब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासलक्षणाश्रमतद्धर्मा-दिकान् विभज्य करोति इति वा व्यवस्थानः।** 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (पा० सू० ३। ३। ११३) **इति बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट् प्रत्ययः**।।३८५।। **अत्र भूतानां संस्थितिः प्रलयात्मिका, समीचीनं स्थानमस्येति वा** संस्थानः॥३८६॥ **ध्रुवादीनां कर्मानुरूपं स्थानं ददातीति** स्थानदः॥३८७॥

अविनाशित्वात् ध्रुवः॥३८८॥ **पराऋद्धिर्विभूतिरस्येति** परर्द्धिः॥३८९॥ **परा मा शोभा अस्येति परमः, सर्वोत्कृष्टो वा अनन्याधीनसिद्धित्वात्, संविदात्मतया स्पष्टः** परमस्पष्टः॥३९०॥ **परमानन्दैकरूपत्वात्** तुष्टः॥३९१॥ **सर्वत्र सम्पूर्णत्वात्** पुष्टः॥३९२॥ **ईक्षणं दर्शनं यस्य शुभं शुभकरं मुमुक्षूणां मोक्षदं भोगार्थिनां भोगदं सर्वसन्देहविच्छेदकारणं पापिनां पावनं हृदयग्रन्थेर्विच्छेदकरं सर्वकर्मणां क्षपणम् अविद्यायाश्च निवर्तकं स** शुभेक्षणः, 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' (मु० उ० २। २। ८) **इत्यादि श्रुतेः**॥३९३॥55॥

रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः॥56॥

नित्यानन्दलक्षणेऽस्मिन् योगिनो रमन्त इति रामः;

'रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनैतत् परं ब्रह्माभिधीयते॥'

इति पद्मपुराणे; स्वेच्छया रमणीयं वपुर्वहन्वा दाशरथी रामः॥३९४॥ **विरामोऽवसानं प्राणिनामस्मिन्निति** विरामः॥३९५॥ **विगतं रतमस्य विषयसेवायामिति** विरतः॥३९६॥ **यं विदित्वा अमृतत्वाय कल्पन्ते योगिनो मुमुक्षवः स एव पन्थाः** मार्गः। 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० उ० ६। १५) **इति श्रुतेः**॥३९७॥

मार्गेण सम्यग्ज्ञानेन जीवः परमात्मतया नीयत इति नेयः।।३९८।। **नयतीति** नयः **नेता। मार्गो नेयो नय इति त्रिरूपः परिकल्प्यते**।।३९९।। **नास्य नेता विद्यत इति** अनयः।।४००।।

इति नाम्नां चतुर्थं शतं विवृतम्।

विक्रमशालित्वात् वीरः।।४०१।। **शक्तिमतां विरिञ्च्यादीनामपि शक्तिमत्त्वात्** शक्तिमतां श्रेष्ठः।।४०२।।

सर्वभूतानां धारणाद् धर्मः, 'अणुरेष धर्मः' (क० उ० १। १। २१) **इति श्रुतेः; धर्मैराराध्यत इति वा धर्मः**।।४०३।। **श्रुतयः स्मृतयश्च यस्याज्ञाभूताः स एव सर्वधर्मविदामुत्तमः इति** धर्मविदुत्तमः।।४०४।।56।।

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः।।57।।

विविधा कुण्ठा गतेः प्रतिहतिः। विकुण्ठा, विकुण्ठायाः कर्तेति वैकुण्ठः, **जगदारम्भे विश्लिष्टानि भूतानि परस्परं संश्लेषयन् तेषां गतिं प्रतिबध्नातीति।**

'मया संश्लेषिता भूमिरद्भिर्व्योम च वायुना।
वायुश्च तेजसा सार्धं वैकुण्ठत्वं ततो मम।।'

इति शान्तिपर्वणि। (३४२ । ८०)।।४०५।।

सर्वस्मात्पुरा सदनात्सर्वपापस्य सादनाद्वा पुरुषः, 'स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्व–स्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुषः' (बृ० उ० १। ४। १) **इति श्रुतेः, पुरि शयनाद्वा पुरुषः**, 'स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयः' (बृ० उ०२।५।१८) इति श्रुतेः।।४०६।। **प्राणिति क्षेत्रज्ञरूपेण प्राणात्मना चेष्टयन् वा** प्राणः। 'चेष्टां करोति श्वसनस्वरूपी' **इति विष्णुपुराणे**।।४०७।। **खण्डयति प्राणिनां प्राणान् प्रलयादिष्विति** प्राणदः।।४०८।। **प्रणौतीति** प्रणवः, 'तस्मादोमिति प्रणौति' **इति श्रुतेः। प्रणम्यते इति वा प्रणवः**, 'प्रणमन्तीह वै वेदास्तस्मात्

प्रणव उच्यते' **इति सनत्कुमार- वचनात्**।।४०९।। **प्रपञ्चरूपेण विस्तृतत्वात्** पृथुः।।४१०।। **हिरण्यगर्भसम्भूतिकारणं हिरणमयमण्डं यद्वीर्यसम्भूतम्, तदस्य गर्भ इति** हिरण्यगर्भः।।४११।। **त्रिदशशत्रून् हन्तीति** शत्रुघ्नः।।४१२।। **कारणत्वेन सर्वकार्याणां व्यापनाद्** व्याप्तः।।४१३।।

वाति गन्धं करोतीति वायुः, 'पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च' (गीता ७।९) **इति भगवद्वचनात्**।।४१४।। 'अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः।' **इति उद्योगपर्वणि**; (७०।१०) **द्यौरक्षं पृथिवी चाधः, तयोर्यस्मादजायत मध्ये वैराजरूपेण इति वा** अधोक्षजः **अधोभूते प्रत्यक्प्रवाहिते अक्षगणे जायत इति वा अधोक्षजः**।

'अधोभूते ह्यक्षगणे प्रत्यग्रूपप्रवाहिते।
जायते तस्य वै ज्ञानं तेनाधोक्षज उच्यते।।' इति।।४१५।।57।।

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः।।58।।

कालात्मना ऋतुशब्देन लक्ष्यत इति ऋतुः।।४१६।। **शोभनं निर्वाणफलं दर्शनं ज्ञानमस्येति, शुभे दर्शने ईक्षणे पद्मपत्रायते अस्येति, सुखेन दृश्यते भक्तैरिति वा** सुदर्शनः।।४१७।। **कलयति सर्वमिति** कालः, 'कालः कलयतामहम्' (गीता १०।३०) **इति भगवद्वचनात्**।।४१८।। **परमे प्रकृष्टे स्वे महिम्नि हृदयाकाशे स्थातुं शीलमस्येति** परमेष्ठी 'परमेष्ठी बिभ्राजते' **इति मन्त्रवर्णात्**।।४१९।।

शरणार्थिभिः परितो गृह्यते सर्वगतत्वात्, परितो ज्ञायते इति वा, पत्रपुष्पादिकं भक्तैरर्पितं परिगृह्णातीति वा परिग्रहः।।४२०।। **सूर्यादीनामपि भयहेतुत्वात्** उग्रः, 'भीषोदेति सूर्यः' (तै० उ० २।८) **इति श्रुतेः**।।४२१।। **संवसन्ति भूतान्यस्मिन्निति** संवत्सरः।।४२२।। **जगद्रूपेण वर्धमानत्वात् सर्वकर्माणि क्षिप्रं करोतीति वा** दक्षः।।४२३।। **संसारसागरे क्षुत्पिपासादिषडूर्मिभिस्तरङ्गित्ते अविद्याद्यैर्महाक्लेशैः मदादिभिरुपक्लेशैश्च वशीकृतानां विश्रान्तिं काङ्क्षमाणानां विश्रामं मोक्षं करोतीति**

विश्रामः।।४२४।। **विश्वस्मात् दक्षिणः शक्तः, विश्वेषु कर्मसु दाक्षिण्याद्वा** विश्वदक्षिणः।।४२५।।58।।

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्यम्।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः।।59।।

विस्तीर्यन्ते समस्तानि जगन्त्यस्मिन्निति विस्तारः।।४२६।। **स्थितिशीलत्वात् स्थावरः; स्थितिशीलानि पृथिव्यादीनि तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थाणुः स्थावरश्चासौ स्थाणुश्च** स्थावरस्थाणुः।।४२७।। **संविदात्माना** प्रमाणम्।।४२८।। **अन्यथाभावव्यतिरेकेण कारणमिति** बीजमव्ययम्, **सविशेषणमेकं नाम**।।४२९।। **सुखरूपत्वात् सर्वैरर्थ्यत इति** अर्थः।।४३०।। **न विद्यते प्रयोजनम् आप्तकामत्वात् अस्येति** अनर्थः।।४३१।। **महान्तः कोशा अन्नमयादयः आच्छादका अस्येति** महाकोशः।।४३२।। **महान् भोगः सुखरूपोऽस्येति** महाभोगः।।४३३।। **महत् भोगसाधनलक्षणं धनमस्येति** महाधनः।।४३४।।59।।

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः।।60।।

आप्तकामत्वात् निर्वेदोऽस्य न विद्यत इति अनिर्विण्णः।।४३५।। **वैराजरूपेण स्थितः** स्थविष्ठः; 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ' (मु० उ० २।१।४) **इति श्रुतेः**।।४३६।। **अजन्मा** अभूः; **अथवा भवतीति** भूः **'भूसत्तायाम्' इत्यस्य सम्पदादित्वात् क्विप्; मही वा**।।४३७।। **यूपे पशुवत् तत्समाराधनात्मका धर्मास्तत्र बध्यन्त इति** धर्मयूपः।।४३८।। **यस्मिन्नर्पिता मखा यज्ञा निर्वाणलक्षणफलं प्रयच्छन्तो महान्तो जायन्ते स** महामखः।।४३९।।

'नक्षत्रतारकैः सार्धं चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
वायुपाशमयैर्बन्धैर्निबद्धा ध्रुवसंज्ञिते।।'

सज्योतिषां चक्रं भ्रामयंस्तारामयस्य शिशुमारस्य पुच्छदेशे व्यवस्थितो ध्रुवः। तस्य शिशुमारस्य हृदये ज्योतिश्चक्रस्य नेमिवत्प्रवर्तकः स्थितो विष्णुरिति नक्षत्रनेमिः; **शिशुमारवर्णने 'विष्णुहृदयम्' इति स्वाध्यायब्राह्मणे श्रूयते**।।४४०।। **चन्द्ररूपेण** नक्षत्री, 'नक्षत्राणामहं शशी' (गीता १०। २१) **इति भगवद्वचनात्**।।४४१।। **समस्तकार्येषु समर्थः** क्षमः, **क्षमत इति वा**, 'क्षमया पृथिवीसमः' (वा० रा० १। १। १८) **इति वाल्मीकिवचनात्**।।४४२।। **सर्वविकारेषु क्षपितेषु स्वात्मनावस्थित इति** क्षामः। 'क्षायो मः' (पा० सू० ८।२।५३) **इति निष्ठातकारस्य मकारादेशः**।।४४३।। **सृष्ट्याद्यर्थं सम्यगीहत इति** समीहनः।।४४४।।60।।

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम्।।61।।

सर्वयज्ञस्वरूपत्वाद् यज्ञः; **सर्वेषां देवानां तुष्टिकारको यज्ञाकारेण प्रवर्तत इति वा**, 'यज्ञो वै विष्णुः' (तै० सं० १।७।४) **इति श्रुतेः**।।४४५।।

यष्टव्योऽप्ययमेवेति इज्यः।

'ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्देवतादीन् पितॄनपि।
आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते।।'

इति हरिवंशे (३। ४०। २७)।।४४६।। **सर्वासु देवतासु यष्टव्यासु प्रकर्षेण यष्टव्यो मोक्षफलदातृत्वादिति** महेज्यः।।४४७।। **यूपसहितो यज्ञः** क्रतुः।।४४८।। **आसत्युपैति चोदनालक्षणं** सत्रम्; **सतस्त्रायत इति वा**।।४४९।। **सतां मुमुक्षूणां नान्या गतिरिति** सतां गतिः।।४५०।। **सर्वेषां प्राणिनां कृताकृतं सर्वं पश्यति स्वाभाविकेन बोधेनेति** सर्वदर्शी।।४५१।। **स्वभावेन विमुक्त आत्मा यस्येति, विमुक्तश्चासावात्मा चेति वा** विमुक्तात्मा, 'विमुक्तश्च विमुच्यते'। (क० उ० २। ५। १) **इति श्रुतेः**।।४५२।। **सर्वश्चासौ ज्ञश्चेति** सर्वज्ञः, 'इद ँ सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २। ४। ६) **इति श्रुतेः**।।४५३।।

ज्ञानमुत्तममित्येतत्सविशेषणमेकं नाम: ज्ञानं प्रकृष्टजन्यमनवच्छिन्नं सर्वस्य साधकतमिति ज्ञानमुत्तमं **ब्रह्म**, 'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २। १) **इति श्रुते:**।।४५४।।61।।

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारण।।62।।

शोभनं व्रतमस्येति सुव्रतः।

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।'
(वा० रा० ६। १८। ३३)

इति श्रीरामायणे रामवचनम्।।४५५।। **शोभनं मुखमस्येति** सुमुखः। 'प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रायतेक्षणम्।' **इति श्रीविष्णुपुराणे** (६। ७। ८०)। **वनवाससुमुखत्वाद् वा दाशरथी रामः सुमुखः।**

'स्वपितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात् परं प्रियम्।
मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान्।।'
'इमानि तु महारण्ये निहृत्य नव पञ्च च।
वर्षाणि परमप्रीतः स्थास्यामि वचने तव।'
(वा० रा० २। २४। १७)

'न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव मनो रामस्य विव्यथे।।'
(वा० रा० २। १९। ३३)

इति रामायणे। सर्वविद्योपदेशेन वा सुमुखः, 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' (श्वे० उ० ६। १८) **इत्यादिश्रुतेः**।।४५६।।

शब्दादिस्थूलकारणरहितत्वात्– शब्दादयो ह्याकाशादीनामुत्तरोत्तर-स्थूलत्वकारणानि, तद्भावात्– सूक्ष्मः, 'सर्वगतं सुसूक्ष्मम्' (मु० उ०१।१।६)

इति श्रुतेः।।४५७।। **शोभनो घोषो वेदात्मकोऽस्येति, मेघगम्भीरघोषत्वाद् वा** सुघोषः।।४५८।।

सद्वृत्तानां सुखं ददाति, असद्वृत्तानां सुखं द्यति खण्डयतीति वा सुखदः।।४५९।। **प्रत्युपकारानिरपेक्ष तयोपकारित्वात्** सुहृत्।।४६०।।

निरतिशयानन्दरूपत्वात् मनो हरतीति मनोहरः, 'यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (छा० उ० ७। २३। १) इति श्रुतेः।।४६१।। **जितः क्रोधो येन स** जितक्रोधः, **वेदमर्यादास्थापनार्थं सुरारीन् हन्ति न तु कोपवशादिति।।४६२।। त्रिदशशत्रून्निघ्नन् वेदमर्यादां स्थापयन् विक्रमशाली बाहुरस्येति** वीरबाहुः।।४६३।। **अधार्मिकान् विदारयतीति** विदारणः।।४६४।।62।।

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ।।63।।

प्राणिनः स्वापयन् आत्मसम्बोधविधूरान् मायया कुर्वन् स्वापनः।।४६५।। **स्वतन्त्रः** स्ववशः **जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुत्वात्।।४६६।। आकाशवत् सर्वगतत्वात्** व्यापी, 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' **इति श्रुतेः; कारणत्वेन सर्वकार्याणां व्यापनाद् वा व्यापी।।४६७।। जगदुत्पत्त्यादिषु आविर्भूतनिमित्तशक्तिभिर्विभूतिभिरनेकधा तिष्ठन्** नैकात्मा।।४६८।। **जगदुत्पत्तिसम्पत्तिविपत्तिप्रभृतिकर्माणि करोतीति** नैककर्मकृत्।।४६९।। **वसत्यत्राखिलमिति** वत्सरः।।४७०।। **भक्तस्नेहित्वात्** वत्सलः; 'वत्सांसाभ्यां कामबले' (पा० सू० ५। २। ९८) **इति लच्प्रत्ययः।।४७१।। वत्सानां पालनात् वत्सी, जगत्पितुस्तस्य वत्सभूताः प्रजा इति वा वत्सी।।४७२।। रत्नानि गर्भभूतानि अस्येति समुद्रो** रत्नगर्भः।।४७३।। **धनानामीश्वरः** धनेश्वरः।।४७४।।63।।

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत् क्षरमक्षरम्।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ।।64।।

धर्मं गोपयतीति धर्मगुप्, 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।' (गीता ४।८) **इति भगवद्वचनात्**।।४७५।। **धर्माधर्मविहीनोऽपि धर्ममर्यादास्थापनार्थं धर्ममेव करोतीति** धर्मकृत्।।४७६।। **धर्मान् धारयतीति** धर्मी।।४७७।। **अवितथं परं ब्रह्म** सत् 'सदेव सोम्येदम्' (छा० उ० ६।२।१) **इति श्रुतेः**।।४७८।। **अपरं ब्रह्म** असत्, 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' (छा० उ० ६। १। ४) **इति श्रुतेः**।।४७९।। **सर्वाणि भूतानि** क्षरम्।।४८०।। **कूटस्थः** अक्षरम्,

'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।' (गीता १५। १६)

इति भगवद्वचनात्।।४८१।। **आत्मनि कर्तृत्वादिविकल्पविज्ञानं कल्पितमिति तद्वासनावगुण्ठितो जीवो विज्ञाता, तद्विलक्षणो विष्णुः** अविज्ञाता।।४८२।। **आदित्यदिगता अंशवोऽस्येत्ययमेव मुख्यः** सहस्रांशुः, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' (तै० ब्रा० ३। १२। ७९। ७) **इति श्रुतेः**, 'यदादित्यगतं तेजः' (गीता १५। १२) **इति स्मृतेश्च**।।४८३।। **विशेषेण शेषदिग्गजभूधरान् सर्वभूतानां धातृन् दधातीति** विधाता।।४८४।। **नित्यनिष्पन्नचैतन्यरूपत्वात्** कृतलक्षणः, **कृतानि लक्षणानि शास्त्राण्यनेनेति वा;**

'वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात्।'
(वि० स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति; सजातीयविजातीयव्यवच्छेदकं लक्षणं सर्वभावानां कृतमनेनेति वा; आत्मनः श्रीवत्सलक्षणं वक्षसि तेन कृतमिति वा कृतलक्षणः।।४८५।।64।।

चतुर्थाह्निकम्।।४।।

*****

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः॥65॥

गभस्तिचक्रस्य मध्ये सूर्यात्मना स्थिति इति गभस्तिनेमिः॥४८६॥

सत्त्वं गुणं प्रकाशकं प्राधान्येनाधितिष्ठतीति, सर्वप्राणिषु तिष्ठतीति वा सत्त्वस्थः॥४८७॥ विक्रमशालित्वात् सिंहवत् सिंहः, नृशब्दलोपेन 'सत्यभामा भामा' इतिवद् वा सिंहः॥४८८॥ भूतानां महानीश्वरः भूतेन सत्येन स एव परमो महानीश्वरः इति वा भूतमहेश्वरः॥४८९॥ सर्वभूतान्यादीयन्तेऽनेनेति आदिः। आदिश्चासौ देवश्चेति आदिदेवः॥४९०॥ सर्वान् भावान् परित्यज्य, आत्मज्ञानयोगैश्वर्ये महति महीयते, तस्मादुच्यते महादेवः॥४९१॥ प्राधान्येन देवानामीशो देवेशः॥४९२॥ देवान् बिभर्तीति देवभृत् शक्रः, तस्यापि शासितेति देवभृद्गुरुः; देवानां भरणात् सर्वविद्यानां च निगरणाद् वा देवभृद्गुरुः॥४९३॥65॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः॥66॥

जन्मसंसारबन्धनादुत्तरतीति उत्तरः; सर्वोत्कृष्ट इति वा, 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः,' इति श्रुतेः॥४९४॥ गवां पालनाद् गोपवेषधरो गोपतिः गौर्मही; तस्याः पतित्वाद् वा॥४९५॥ समस्तभूतानि पालयन् रक्षको जगतः इति गोप्ता॥४९६॥ न कर्मणा न ज्ञानकर्मभ्यां वा गम्यते किन्तु ज्ञानेन गम्यत इति ज्ञानगम्यः॥४९७॥ कालेनापरिच्छिन्नत्वात् पुरापि भवतीति पुरातनः॥४९८॥

शरीरारम्भकभूतानां भरणात् प्राणरूपधरः शरीरभूतभृत्॥४९९॥

पालकत्वाद् भोक्ता; परमानन्दसन्दोहसम्भोगाद् वा भोक्ता॥५००॥

इति नाम्नां पञ्चमं शतं विवृतम्

कपिश्चासाविन्द्रश्चेति कपिर्वराहः, वाराहं वपुरास्थितः कपीन्द्रः; कपीनां वानराणामिन्द्रः कपीन्द्रः राघवो वा॥५०१॥ भूरयः बह्व्यः यजदक्षिणाः धर्ममर्यादां दर्शयतो यज्ञं कुर्वतो विद्यन्त इति भूरिदक्षिणः॥५०२॥66॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित् पुरसत्तमः।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः॥67॥

सोमं पिबति सर्वयज्ञेषु यष्टव्यदेवतारूपेणेति सोमपः; धर्ममर्यादां दर्शयन् यजमानरूपेण वा सोमपः॥५०३॥ स्वात्मामृतरसं विबन् अमृतपः; असुरैः ह्रियमाणममृतं रक्षित्व देवान् पाययित्वा स्वयमप्यपिबदिति वा॥५०४॥ सोमरूपेणौषधीः पोषयन् सोमः; उमया सहतिः शिवो वा॥५०५॥ पुरून् बहून् जयतीति पुरुजित्॥५०६॥ विश्वरूपत्वात् पुरुः, उत्कृष्टत्वात् सत्तमः, पुरुश्चासौ सत्तमश्चेति पुरुसत्तमः॥५०७॥ विनयं दण्डं करोति दुष्टानामिति विनयः॥५०८॥ समस्तानि भूतानि जयतीति जयः। सत्या सन्धा सङ्कल्पः अस्येति सत्यसन्धः; 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८। १। ५) इति श्रुतेः॥५१०॥ दाशो दानं तमर्हतीति दाशार्हः; दशार्हकुलोद्भवत्वाद् वा॥५११॥ सात्वतं नाम तन्त्रम्, 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि कृते क्विप्प्रत्यये णिलोपे च कृते पदं सात्वत्, तेषां पतिः योगक्षेमकर इति सात्वतां पतिः॥५१२॥67॥

जीवो विनयितासाक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः॥68॥

प्राणान् क्षेत्रज्ञरूपेण धारयन्, जीवः उच्यते॥५१३॥ विनयित्वं विनयिता, तां च साक्षात् पश्यति प्रजानामिति विनयितासाक्षी; अथवा, नयतेर्गतिवाचिनो रूपं विनयिता, असाक्षी असाक्षाद्द्रष्टा आत्मातिरिक्तं वस्तु न पश्यतीत्यर्थः॥५१४॥ मुक्तिं ददातीति मुकुन्दः, पृषोदरादित्वा-

त्साधुत्वम्। अक्षरसाम्यन्निरुक्तिवचनात् नैरुक्तानां मुकुन्द इति निरुक्तिः॥५१५॥ अमिता अपरिच्छिन्ना विक्रमास्त्रयः पादविक्षेपा अस्य, अमितं विक्रमणं शौर्यमस्येति वा अमितविक्रमः॥५१६॥ अम्भांसि देवादयोऽस्मिन्निधीयन्त इति अम्भोनिधिः, 'तानि वा एतानि चत्वार्यम्भांसि। देवा मनुष्याः पितरोऽसुराः' इति श्रुतेः। सागरो वा, 'सरसामस्मि सागरः' (गीता १०। २४) इति भगवद्वचनात्॥५१७॥ देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नत्वात् अनन्तात्मा॥५१८॥ संहृत्य सर्वभूतान्येकार्णवं जगत् कृत्वा अधिशेते महोदधिमिति महोदधिशयः॥५१९॥ अन्तं करोति भूतानामिति अन्तकः। 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि 'ण्वुल्तृचौ' (पा० सू० ३। १। १३३) इति ण्वुलि 'युवोरनाकौ' (पा० सू० ७। १। १) इति अकादेशः॥५२०॥68॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः॥69॥

आत् विष्णोरजायत इति कामः अजः॥५२१॥ महः पूजा तदर्हत्वात् महार्हः॥५२२॥ स्वभावेनैवाभाव्यो नित्यनिष्पन्नरूपत्वाद् इति स्वाभाव्यः॥५२३॥ जिता अमित्रा अन्तर्वर्तिनो रागद्वेषादयो बाह्याश्च रावणकुम्भकर्ण- शिशुपालादयो येनासौ जितामित्रः॥५२४॥ स्वात्मामृतरसास्वादान्नित्यं प्रमोदते, ध्यायिनां ध्यानमात्रेण प्रमोदं करोतीति वा प्रमोदनः॥५२५॥

आनन्दः स्वरूपमस्येति आनन्दः, 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० उ० ४। ३। ३२) इति श्रुतेः॥५२६॥ नन्दयतीति नन्दनः॥५२७॥ सर्वाभिरुपपत्तिभिः समृद्धो नन्दः। सुखं वैषयिकं नास्य विद्यत इति अनन्दः, 'यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति' (छा० उ०७।२३।१) इति श्रुतेः॥५२८॥ सत्या धर्मा ज्ञानादयोऽस्येति सत्यधर्मा॥५२९॥ त्रयो विक्रमास्त्रिषु लोकेषु क्रान्ता यस्य स त्रिविक्रमः,

'त्रीणि पदा विचक्रमे' **इति श्रुतेः, त्रयो लोकाः क्रान्ता येनेति वा त्रिविक्रमः।**

'त्रिरित्येव त्रयो लोकाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः।
क्रमते तांस्त्रिधा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः।।'
(३।८८।५१)

इति हरिवंशे।।५३०।।69।।

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत्।।70।।

महर्षिः कपिलाचार्यः **इति सविशेषणमेकं नाम। महांश्चासावृषिश्चेति महर्षिः, कृत्स्नस्य वेदस्य दर्शनात्; अन्ये तु वेदैकदेशदर्शनाद् ऋषयः; कपिलश्चासौ सांख्यस्य शुद्धतत्त्वविज्ञानस्याचार्यश्चेति कपिलाचार्यः**

'शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।' **इति स्मृतेः।**

'ऋषिं प्रसूतं कपिलम्' (श्वे० उ० ५। २) **इति श्रुतेश्च,**

'सिद्धानां कपिलो मुनिः' (गीता १०। २६) **इति स्मृतेश्च**।।५३१।। **कृतं कार्यं जगत्, ज्ञ आत्मा, कृतं च तज् ज्ञश्चेति** कृतज्ञः।।५३२।।

मेदिन्या भूम्याः पतिः मेदिनीपतिः।।५३३।।

त्रीणि पदान्यस्येति त्रिपदः 'त्रीणि पदा विचक्रमे' **इति श्रुतेः**।।५३४।।

गुणावेशेन सञ्जातास्तिस्रो दशा अवस्था जाग्रदादयः, तासामध्यक्ष इति त्रिदशाध्यक्षः।।५३५।। **मत्स्यरूपी महति शृङ्गे प्रलयाम्भोधौ नावं बद्ध्वा चिक्रीड इति** महाशृङ्गः।।५३६।। **कृतस्यान्तं संहारं करोतीति, कृतान्तं मृत्युं कृन्ततीति वा** कृतान्तकृत।।५३७।।70।।

विश्रामः।।३।।

*****

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥71॥

महांश्चासौ वराहश्चेति महावराहः॥५३८॥ **गोभिर्वाणीभिर्विन्दते, वेत्ति वेदान्तवाक्यैरिति वा** गोविन्दः।'गोभिरेव यतो वेद्यो गोविन्दः समुदाहृतः।'

इति श्रीविष्णुतिलके॥५३९॥ **शोभना सेना गणात्मिका यस्येति** सुषेणः॥५४०॥ **कनकमयान्यङ्गदानि अस्येति** कनकाङ्गदी॥५४१॥ **रहस्योपनिषद्वेद्यत्वाद् गुहायां हृदयाकाशे निहित इति वा** गुह्यः। **ज्ञानैश्वर्यबलवीर्यादिभिर्गम्भीरो** गभीरः॥५४३॥ **दुष्प्रवेशत्वात्** गहनः, **अवस्थात्रयभावाभावसाक्षित्वाद् गहनो वा**॥५४४॥ **वाङ्मनसागोचरत्वात्** गुप्तः, 'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।' (क० उ० १।३।१२) **इति श्रुतेः**॥५४५॥

'मनस्तत्त्वात्मकं चक्रं बुद्धितत्त्वात्मिकां गदाम्।
धारयन् लोकरक्षार्थमुक्तश्चक्रगदाधरः॥'

इति चक्रगदाधरः॥५४६॥71॥

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥72॥

विधाता वेधाः। **पृषोदरादित्वात् साधुत्वम्**॥५४७॥ **स्वयमेव कार्यकरणे अङ्गं सहकारीति** स्वाङ्गः॥५४८॥ **न केनाप्यवतारेषु जित इति** अजितः॥५४९॥ कृष्णः **कृष्णद्वैपायनः**,

'कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद् भवेत्॥'
(३।४।५)

इति विष्णुपुराणवचनात्।।५५०।। **स्वरूपसामर्थ्यादेर्प्रच्युत्यभावात्** दृढः।।५५१।। **संहारसमये युगपत् प्रजाः सङ्कर्षतीति सङ्कर्षणः, न च्योतति स्वरूपादित्यच्युतः,** सङ्कर्षणोऽच्युतः **इति नामैकं सविशेषणम्**।।५५२।।

स्वरश्मीनां संवरणात् सायङ्गतः सूर्यो वरुणः, 'इमं मे वरुण श्रुधी हवम्' **इति मंत्रवर्णात्**।।५५३।। **वरुणस्यापत्यं वसिष्ठोऽगस्त्यो वा** वारुणः।।५५४।। **वृक्ष इवाचलतया स्थित इति** वृक्षः, 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः', (श्वे० उ० ३।९) **इति श्रुतेः**।।५५५।। **व्याप्त्यर्थादक्षतेर्धातोः पुष्करोपपदादणप्रत्यये** पुष्कराक्षः; **हृदयपुण्डरीके चिन्तितः स्वरूपेण प्रकाशत इति वा पुष्कराक्षः**।।५५६।।

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि मनसैव करोतीति महामनाः; 'मनसैव जगत्सृष्टिं संहारं च करोति यः।' **इति विष्णुपुराणे**।।५५७।।72।।

भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुधः।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ।।73।।

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।'
(विष्णु० ६। ५। ७४।

सोऽस्यास्तीति भगवान्।

'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।'
(६। ५। ७८)

इति विष्णुपुराणे।।५५८।। **ऐश्वर्यादिकं संहारसमये हन्तीति** भगहा।।५५९।। **सुखस्वरूपत्वात् आनन्दी; सर्वसम्पत्समृद्धत्वादानन्दी वा**।।५६०।। **भूततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां वनमालां वहन्** वनमाली।।५६१।। **हलमायुधमस्येति** हलायुधः **बलभद्राकृतिः**।।५६२।। **अदित्यां कश्यपाद्**

वामनरूपेण जात आदित्यः।५६३।। ज्योतिषि सवितृमण्डले स्थितो ज्योतिरादित्यः।५६४।। द्वन्द्वानि शीतोष्णादीनि सहत इति सहिष्णुः।५६५।। गतिश्चासौ सत्तमश्चेति गतिसत्तमः।५६६।।73।।

सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः।
दिवःस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ।।74।।

शोभनमिन्द्रियादिमयं शार्ङ्गं धनुरस्यास्तीति सुधन्वा।।५६७।। शत्रूणां खण्डनात् खण्डः परशुरस्य जामदग्न्याकृतेरिति खण्डपरशुः; अखण्डः परशुरस्येति वा (अखण्डपरशुः)।।५६८।। सन्मार्गविरोधिनां दारुणत्वात् दारुणः।।५६९।। द्रविणं वाञ्छितं भक्तेभ्यः प्रददातीति द्रविणप्रदः।।५७०।। दिवः स्पर्शनात् दिवःस्पृक्।।५७१।। सर्वदृशां सर्वज्ञानानां विस्तारकृद् व्यासः सर्वदृग्व्यासः। अथवा, सर्वा च सा दृक् चेति सर्वदृक् सर्वाकारं ज्ञानम्; सर्वस्य दृष्टित्वाद् वा सर्वदृक्। ऋग्वेदादिविभागेन चतुर्धा वेदा व्यस्ताः कृताः, आद्यो वेद एकविंशतिधा कृतः, द्वितीय एकोत्तरशतधा कृतः, सामवेदः सहस्रधा कृतः, अथर्ववेदो नवधा शाखाभेदेन कृतः। एवम् अन्यानि च पुराणानि व्यस्तान्यनेनेति व्यासः ब्रह्मा।।५७२।। वाचस्पतिरयोनिजः, वाचो विद्यायाः पतिः वाचस्पतिः, जनन्यां न जायत इति अयोनिजः; इति सविशेषणमेकं नाम।।५७३।।74।।

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक्।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ।।75।।

देवव्रतसमाख्यातैस्त्रिभिः सामभिः सामगैः स्तुत इति त्रिसामा।।५७४।। साम गायतीति सामगः।।५७५।। 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' (गीता १०। २२) इति भगवद्वचनात् सामवेदः साम।।५७६।। सर्वदुःखोपशमलक्षणं परमानन्दरूपं निर्वाणम्।।५७७।। संसाररोगस्यौषधं भेषजम्।।५७८।। संसाररोगनिर्मोक्षकारिणीं परां विद्यामुपदिदेश गीतास्विति भिषक् 'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि' इति श्रुतेः।।५७९।। मोक्षार्थं चतुर्थमाश्रमं कृतवानिति

संन्यासकृत्।।५८०।। **संन्यासिनां प्राधान्येन ज्ञानसाधनं शममाचष्ट इति** शमः,

'यतीनां प्रशमो धर्मो नियमो वनवासिनाम्।
दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्।।'

इति स्मृतेः। 'तत् करोति तदाचष्टे' (चुरादिगणसूत्रम्) **इति णिचि पचाद्यचि कृते रूपं शम इति। सर्वभूतानां शमयितेति वा शमः।।**५८१।। **विषयसुखेष्वसङ्गतया** शान्तः, 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' (श्वे० उ० ६।१९) **इति श्रुतेः।।**५८२।। **प्रलये नितरां तत्रैव तिष्ठन्ति भूतानीति** निष्ठा।।५८३।। **समस्ताविद्यानिवृत्तिः** शान्तिः **सा ब्रह्मैव।।**५८४।। **परमुत्कृष्टमयनं स्थानं पुनरावृत्तिशङ्कारहितमिति** परायणम्। **पुँल्लिङ्गपक्षे बहुव्रीहिः।।**५८५।।75।।

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः।।76।।

सुन्दरां तनुं धारयन् शुभाङ्गः।।५८६।। **रागद्वेषादिनिर्मोक्षलक्षणां शान्तिं ददातीति** शान्तिदः।।५८७।। **सर्गादौ सर्वभूतानि ससर्ज** स्रष्टा।।५८८।। **कौ भूम्यां मोदत इति** कुमुदः।।५८९।। **कोः क्षितेर्वलनात् संसरणात् कुवलं जलम्, तस्मिन् शेत इति**

कुवलेशयः; 'शयवासवासिष्वकालात्' (पा० सू० ६। २। १८) **इति अलुक् सप्तम्याः; कुवलस्य बदरीफलस्य मध्ये शेते तक्षकः, सोऽपि तस्य विभूतिरिति वा हरिः कुवलेशयः; कौ भूम्यां वलते संश्रयत इति सर्पाणामुदरं कुवलम् तस्मिन् शेषोदरे शेत इति कुवलेशयः।।**५९०।। **गवां वृद्ध्यर्थं गोवर्धनं धृतवानिति गोभ्यो हितो** गोहितः; **गोर्भूमेः भारावतरणेच्छया शरीरग्रहणं कुर्वन् वा गोहितः।।**५९१।।

गोर्भूम्याः पतिः गोपतिः।।५९२।। **रक्षको जगत इति** गोप्ता। **स्वमायया स्वमात्मानं संवृणोतीति वा गोप्ता।।**५९३।। **सकलान् कामान् वर्षुके अक्षिणी अस्येति, वृषभो धर्मः स एव वा दृष्टिरस्येति** वृषभाक्षः।।५९४।।

वृषो धर्मः प्रियो यस्य स वृषप्रियः; 'वा प्रियस्य' (वार्तिकम्) इति पूर्वनिपातविकल्पविधानात् परनिपातः; वृषश्चासौ प्रियश्चेति वा।।५९५।।76।।

अनिवर्ती निवृत्तात्मा सङ्क्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः।

श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः।।77।।

देवासुरसंग्रामान्न निवर्तत इति अनिवर्ती; वृषप्रियत्वाद्धर्मान्न निवर्तत इति वा।।५९६।। स्वभावतो विषयेभ्यो निवृत्त आत्मा मनोऽस्येति निवृत्तात्मा।।५९७।। विस्तृतं जगत् संहारसमये सूक्ष्मरूपेण सङ्क्षिपन् सङ्क्षेप्ता।।५९८।। उपात्तस्य परिरक्षणं करोतीति क्षेमकृत्।।५९९।। स्वनामस्मृतिमात्रेण पावयन् शिवः।।६००।।

इति नाम्नां षष्ठं शतं विवृतम्।

श्रीवत्ससंज्ञं चिह्नमस्य वक्षसि स्थितमिति श्रीवत्सवक्षाः।।६०१।। अस्य वक्षसि श्रीरनपायिनी वसीति श्रीवासः।।६०२।। अमृतमथने सर्वान् सुरासुरादीन् विहाय श्रीरेनं पतित्वेन वरयामासेति श्रीपतिः। श्रीः परा शक्तिः, तस्याः पतिरिति वा, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते (श्वे० उ०६।८) इति श्रुतेः।।६०३।। ऋग्यजुः सामलक्षणा श्रीर्येषां तेषां सर्वेषां श्रीमतां विरिञ्च्यादीनां प्रधानभूतः श्रीमतां वरः; 'ऋचः सामानि यजूँषि। सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः।।६०४।।77।।

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।

श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः।।78।।

श्रियं ददाति भक्तानामिति श्रीदः।।६०५।। श्रिय ईशः श्रीशः।।६०६।। श्रीमत्सु नित्यं वसतीति श्रीनिवासः। श्रीशब्देन श्रीमन्तो लक्ष्यन्ते।।६०७।। सर्वशक्तिमयेऽस्मिन्नखिलाः श्रियो निधीयन्त इति श्रीनिधिः।।६०८।। कर्मानुरूपेण विविधाः श्रियः सर्वभूतानां विभावयतीति श्रीविभावनः।।६०९।।

सर्वभूतानां जननीं श्रीयं वक्षसि वहन् श्रीधरः।।६१०।। स्मरतां स्तुवताम् अर्चयतां च भक्तानां श्रियं करोतीति श्रीकरः।।६११।। अनपायिसुखावाप्तिलक्षणं श्रेयः, तच्च परस्यैव रूपमिति श्रेयः।।६१२।। श्रियोऽस्य सन्तीति श्रीमान्।।६१३।। त्रयाणां लोकानाम् आश्रयत्वात् लोकत्रयाश्रयः।।६१४।।78।।

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्माविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः।।79।।

शोभने पुण्डरीकाभे अक्षिणी अस्येति स्वक्षः।।६१५।। शोभनान्यङ्गानि अस्येति स्वङ्गः।।६१६।। एक एव परमानन्द उपाधिभेदाच्छतधा भिद्यत इति शतानन्दः। 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० उ० ४। ३। ३२) इति श्रुतेः।।६१७।। परमानन्दविग्रहो नन्दिः।।६१८।। ज्योतिर्गणा- नामीश्वरः ज्योतिर्गणेश्वरः। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्', (क० उ० २।२।१५) इति श्रुतेः। 'यदादित्यगतं तेजः (गीता १५। १२) इत्यादिस्मृतेश्च।।६१९।। विजित आत्मा मनो येन स विजितात्मा।।६२०।। न केनापि विधेय आत्मा स्वरूपमस्येति अविधेयात्मा।।६२१।। सती अवितथा कीर्तिरस्येति सत्कीर्तिः।।६२२।। करतलामलकवत् सर्वं साक्षात्कृतवतः क्वापि संशयो नास्तीति छिन्नसंशयः।।६२३।।79।।

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः।।80।।

सर्वभूतेभ्यः समुद्रिक्तत्वात् उदीर्णः।।६२४।। सर्वतः सर्वं स्वचैतन्येन पश्यतीति सर्वतश्चक्षुः; 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० उ० ३। ३।) इति श्रुतेः।।६२५।।

न विद्यतेऽस्येश इति अनीशः 'न तस्येशे कश्चन' (ना० उ० २) इति श्रुतेः।।६२६।। शश्वद् भवन्नपि न विक्रियां कदाचिदुपैति इति शाश्वतस्थिरः इति नामैकम्।।६२७।। लङ्कां प्रति मार्गमन्वेषयन् सागरं प्रति भूमौ शेत इति भूशयः।।६२८।। स्वेच्छावतारैः बहुभिः भूमिं भूषयन् भूषणः।।६२९।।

भूतिः भवनं सत्ता, विभूतिर्वा; सर्वविभूतीनां कारणत्वाद् वा भूतिः।।६३०।। विगतः शोकोऽस्य परमानन्दैकरूपत्वादिति विशोकः।।६३१।। स्मृतिमात्रेण भक्तानां शोकं नाशयतीति शोकनाशनः।।६३२।।80।।

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः।

अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः।।81।।

अर्चिष्मन्तो यदीयेनार्चिषा चन्द्रसूर्यादयः, स एव मुख्यः अर्चिष्मान्।।६३३।। सर्वलोकार्चितैर्विरिञ्च्यादिभिरप्यर्चित इति अर्चितः।।६३४।। कुम्भवदस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितमिति कुम्भः।।६३५।। गुणत्रयातीततया विशुद्धश्चासावात्मेति विशुद्धात्मा।।६३६।। स्मृतिमात्रेण पापानां क्षपणात् विशोधनः।।६३७।। चतुर्व्यूहेषु चतुर्थो व्यूहः अनिरुद्धः; न निरुद्ध्यते शत्रुभिः कदाचिदिति वा।।६३८।। प्रतिरथः प्रतिपक्षोऽस्य न विद्यत इति अप्रतिरथः।।६३९।। प्रकृष्टं द्युम्नं द्रविणमस्येति प्रद्युम्नः; चतुर्व्यूहात्मा वा।।६४०।। अमितोऽतुलितो विक्रमोऽस्य इति अमितविक्रमः, अहिंसितविक्रमो वा।।६४१।।81।।

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः।।82।।

कालनेमिमसुरं निजघानेति कालनेमिनिहा।।६४२।। वीरः शूरः।।६४३।। शूरकुलोद्भवत्वात् शौरिः।।६४४।। शूरजनानां वासवादीनां शौर्यातिशयेनेष्ट इति शूरजनेश्वरः।।६४५।। त्रयाणां लोकानाम् अन्तर्यामितया आत्मेति, त्रयो लोका अस्मात्परमार्थतो न भिद्यन्त इति वा त्रिलोकात्मा।।६४६।। त्रयो लोकास्तदाज्ञप्ताः स्वेषु स्वेषु कर्मसु वर्तन्त इति त्रिलोकेशः।।६४७।। केशसंज्ञिताः सूर्यादिसङ्क्रान्ता अंशवः, तद्वत्तया केशवः।'

'अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिताः।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः।।'

(शान्ति० ३४१। ४८)

इति महाभारते। ब्रह्मविष्णुशिवाख्याः शक्तयः केशसंज्ञिताः; तद्वत्तया वा केशवः। 'त्रयः केशिनः' **इति श्रुतेः।** 'मत्केशौ वसुधातले' (विष्णु ५। १। ६१। **इति केशशब्दः शक्तिपर्यायत्वेन प्रयुक्तः।**

'को ब्रह्मेति समाख्यात ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्।
आवां तवांशसम्भूतौ तस्मात्केशवनामवान्।।'
(३। ८८। ४८)

इति हरिवंशे।।६४८।। **केशिनामानमसुरं हतवानिति** केशिहा।।६४९।।

सहेतुकं संसारं हरतीति हरिः।।६५०।।82।।

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः।।83।।

धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयं वाञ्छद्भिः काम्यत इति कामः; स चासौ देवश्चेति कामदेवः।।६५१।। **कामिनां कामान् पालयतीति** कामपालः।।६५२।। **पूर्णकामस्वभावत्वात्** कामी।।६५३।। **अभिरूपतमं देहं वहन्** कान्तः। **द्विपरार्धान्ते कस्य ब्रह्मणोऽप्यन्तोऽस्मादिति वा कान्तः**।।६५४।। **कृत आगमः श्रुतिस्मृत्यादिलक्षणो येन स** कृतागमः, 'श्रुतिस्मृतीममैवाज्ञे' **इति भगवद्वचानात्।**

'वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात्।' (वि०स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति।।६५५।। **इदं तदीदृशं वेति निर्देष्टुं यन्न शक्यते गुणाद्यतीतत्वात् तदेव रूपमस्येति** अनिर्देश्यवपुः।।६५६।।

रोदसी व्याप्य कान्तिरभ्यधिका स्थितास्येति विष्णुः।

'व्याप्य मे रोदसी पार्थ कान्तिरभ्यधिका स्थिता।'
'क्रमणाद्वाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः।।'

इति महाभारते (शान्ति० ३४१। ४२-४३)।।६५७।। **गत्यादिमत्त्वात्** वीरः, 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु' **इति धातुपाठात्**।।६५८।।

व्यापित्वान्नित्यत्वात् सर्वात्मत्वाद् देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नः, अनन्तः, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २। १) **इति श्रुतेः।**

'गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः।
नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्यः॥'
(२। ५। २४)

इति विष्णुपुराणवचनाद्वा अनन्तः॥६५९॥ **यद्दिग्विजये प्रभूतं धनमजयत्तेन** धनञ्जयः **अर्जुनः** 'पाण्डवानां धनञ्जयः' (गीता १०। ३७) **इति भगवद्वचनात्**॥६६०॥83॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः॥84॥

'तपो वेदाश्च विप्राश्च ज्ञानं च ब्रह्मसंज्ञितम्।'

तेभ्यो हितत्वात् ब्रह्मण्यः॥६६१॥ **तपआदीनां कर्तृत्वात्** ब्रह्मकृत्॥६६२॥ **ब्रह्मात्मना सर्वं सृजतीति** ब्रह्मा॥६६३॥ **बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च सत्यादिलक्षणं** ब्रह्म, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २।१) **इति श्रुतेः।**

'प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥'

इति विष्णुपुराणे (६। ७। ५३)॥६६४॥ **तपआदीनां विवर्धनात्** ब्रह्मविवर्धनः॥६६५॥ **वेदं वेदार्थं च यथावद् वेत्तीति** ब्रह्मवित्॥६६६॥

ब्राह्मणात्मना समस्तानां लोकानां प्रवचनं कुर्वन् वेदस्यायमिति ब्राह्मणः॥६६७॥ **ब्रह्मसंज्ञितास्तच्छेषभूता अत्रेति** ब्रह्मी॥६६८॥ **वेदान् स्वात्मभूतान् जानातीति** ब्रह्मज्ञः॥६६९॥ **ब्राह्मणानां प्रियो** ब्राह्मणप्रियः; **ब्राह्मणाः प्रिया अस्येति वा।**

'घ्नन्तं शपन्तं परुषं वदन्तं यो ब्राह्मणं न प्रणमेदं यथार्हम्।
स पापकृद् ब्रह्मदवाग्निदग्धो वध्यश्च दण्ड्यश्च न चास्मदीयः।।'

इति भगवद्वचनात्।

'यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः।।'

इति च महाभारते (शान्ति० ४७। २९)।।६७०।।84।।

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः।।85।।

महान्तः क्रमाः पादविक्षेपा अस्येति महाक्रमः; 'शं नो विष्णुरुरुक्रमः' (शुक्लयजु० ३६। ९) **इति श्रुतेः**।।६७१।। **महत् जगदुत्पत्त्यादि कर्मास्येति** महाकर्मा।।६७२।।

यदीयेन तेजसा तेजस्विनो भास्करादयः, तत्तेजो महदस्येति महातेजाः, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' (तै० ब्रा० ३। १२। ९। ७) **इति श्रुतेः।**

'यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।'
(गीता १५। १२)

इति भगवद्वचनाच्च। क्रौर्यशौर्यादिभिर्धर्मैर्महद्भिः समलङ्कृत इति वा महातेजाः।।६७३।। **महांश्चासावुरगश्चेति** महोरगः, 'सर्पाणामस्मि वासुकिः' (गीता १०। २८) **इति भगवद्वचनात्। महांश्चासौ क्रतुश्चेति** महाक्रतुः, 'यथाश्वमेधः क्रतुराट्' (मनु० ११। २६०) **इति मनुवचनात्; सोऽपि स एवेति स्तुतिः**।।६७५।। **महांश्चासौ यज्वा चेति लोकसंग्रहार्थं यज्ञान् निर्वर्तयन्** महायज्वा।।६७६।।

महांश्चासौ यज्ञश्चेति महायज्ञः, 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०।२५) **इति भगवद्वचनात्**।।६७७।। **महच्च तद्धविश्चेति ब्रह्मात्मनि सर्वं**

जगत्तदात्मतया हूयत इति महाहविः। महाक्रतुरित्यादयो बहुव्रीहयो वा।।६७८।।85।।

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः।।86।।

सर्वैः स्तूयते न स्तोता कस्यचिद् इति स्तव्यः।।६७९।। अत एव स्तवप्रियः।।६८०।। येन स्तूयते तत् स्तोत्रम् गुणसंकीर्तनात्मकं तद्धरिरेवेति।।६८१।। स्तुतिः स्तवनक्रिया।।६८२।।

स्तोता अपि स एव।।६८३।। प्रियो रणो यस्य यतः पञ्च महायुधानि धत्ते सततं लोकरक्षणार्थमतो रणप्रियः।।६८४।। सकलैः कामैः सकलाभिः शक्तिभिश्च सम्पन्न इति पूर्णः।।६८५।। न केवलं पूर्ण एव; पूरयिता च सर्वेषां सम्पद्भिः।।६८६।। स्मृतिमात्रेण कल्मषाणि क्षपयतीति पुण्यः।।६८७।। पुण्या कीर्तिरस्य यतः पुण्यमावहत्यस्य कीर्तिर्नृणामिति पुण्यकीर्तिः।।६८८।।

आन्तरैर्बाह्यैर्व्याधिभिः कर्मजैर्न पीड्यत इति अनामयः।।६८९।।86।।

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः।।87।।

मनसो वेग इव वेगोऽस्य सर्वं गतत्वात् मनोजवः।।६९०।। चतुर्दशविद्यानां बाह्यविद्यासमयानां च प्रणेता प्रवक्ता चेति तीर्थकरः। हयग्रीवरूपेण मधुकैटभौ हत्वा विरिञ्चाय सर्गादौ सर्वाः श्रुतीरन्याश्च विद्या उपदिशन् वेदबाह्या विद्याः सुरवैरिणां वञ्चनाय चोपदिदेशेति पौराणिकाः कथयन्ति।।६९१।।

वसु सुवर्णं रेतोऽस्येति वसुरेताः,

'देवः पूर्वमपः सृष्ट्वा तासु वीर्यमपासृजत्।
तदण्डमभवद्धैमं ब्रह्मणः कारणं परम्।।'

इति व्यासवचनात्॥६९२॥ **वसु धनं प्रकर्षेण ददाति साक्षाद्धना-ध्यक्षोऽयम् इतरस्तु तत्प्रसादाद् धनाध्यक्ष इति** वसुप्रदः॥६९३॥ **वसु प्रकृष्टं मोक्षाख्यं फलं भक्तेभ्यः प्रददातीति द्वितीयो** वसुप्रदः 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदः' (बृ० उ० ३। ९। २८) **इति श्रुतेः; सुरारीणां वसूनि प्रकर्षेण खण्डयन् वा वसुप्रदः**॥६९४॥

वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः॥६९५॥ **वसन्ति भूतानि तत्र, तेष्वयमपि वसतीति** वसुः॥६९६॥ **अविशेषेण सर्वेषु विषयेषु वसतीति वसु, तादृशं मनोऽस्येति** वसुमनाः॥६९७॥ 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' (गीता ४।२४) **इति भगवद्वचनात्** हविः॥६९८॥87॥

पञ्चमाह्निकम्॥५॥

*****

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः॥88॥

'अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुः।' (तै० उ० २। ६)

इति श्रुतेः, ब्रह्मास्तीति ये विदुस्ते सन्तः, तैः प्राप्यत इति सद्गतिः, **सती गतिर्बुद्धिः समुत्कृष्टा अस्येति वा सद्गतिः**॥६९९॥ **सती कृतिः जगद्रक्षणलक्षणा अस्य यस्मात्तेन** सत्कृतिः॥७००॥

इति नाम्ना सप्तमं शतं विवृतम्।

सजातीयविजातीयस्वगतभेदरहिता अनुभूतिः सत्ता, 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६। २। १) **इति श्रुतेः**॥७०१॥ **सन्नेव परमात्मा चिदात्मकः अबाधाद् भासमानत्वाच्च** सद्भूतिः **नान्यः, प्रतीतेर्बाध्यमानत्वाच्च न सन्नाप्यसत्। श्रौतो यौक्तिको वा बाधः प्रपञ्चस्य विवक्षितः**॥७०२॥ **सतां तत्त्वविदां परं प्रकृष्टमयनमिति** सत्परायणम्॥७०३॥ **हनुमत्प्रमुखाः सैनिकाः शौर्यशालिनो यस्यां सेनायां सा शूरसेना यस्य स** शूरसेनः॥७०४॥ **यदूनां प्रधानत्वात्** यदुश्रेष्ठः॥७०५॥ **सतां विदुषामाश्रयः** सन्निवासः॥७०६॥

शोभना यामुना यमुनासम्बन्धिनो देवकीवसुदेवनन्दयशोदा-बलभद्रसुभद्रादयः परिवेष्टारोऽस्येति सुयामुनः; गोपवेषधरा यामुनाः परिवेष्टारः पद्मासनादयः शोभना अस्येति वा सुयामुनः॥७०७॥88॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः॥89॥

भूतान्यत्राभिमुख्येन वसन्तीति भूतावासः,

'वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्तवो भवान्।' (३। ८८। ५३)

इति हरिवंशे॥७०८॥ जगदाच्छादयति माययेति वासुः, स एव देव इति वासुदेवः;

'छादयामि जगत् विश्वं भूत्या सूर्य इवांशुभिः।'

(महा० शान्ति० ३४१। ४१)

इति भगवद्वचनात्॥७०९॥ सर्व एवासवः प्राणा जीवात्मके यस्मिन्नाश्रये निलीयन्ते स सर्वासुनिलयः॥७१०॥ अलम्पर्याप्तिः शक्तिसम्पदां नास्य विद्यत इति अनलः॥७११०॥ धर्मविरुद्धे पथि तिष्ठतां दर्पं हन्तीति दर्पहा॥७१२॥ धर्मवर्त्मनि वर्तमानानां दर्पं ददातीति दर्पदः॥७१३॥ स्वात्मामृतरसास्वादनात् नित्यप्रमुदितो दृप्तः॥७१४॥

न शक्या धारणा यस्य प्रणिधानादिषु सर्वोपाधिविनिर्मुक्तत्वात् तथापि तत्प्रसादतः; कैश्चिद् दुःखेन धार्यते हृदये जन्मान्तरसहस्रेषु भावनायोगात्, तस्माद् दुर्धरः।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥' (गीता १२। ५)

इति भगवद्वचनात्॥७१५॥

न आन्तरैः रागादिभिर्बाह्यैरपि दानवादिभिः शत्रुभिः पराजित इति अपराजितः॥७१६॥89॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।

अनेक मूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शतानन:॥90॥

विश्वं मूर्तिरस्य सर्वात्मकत्वाद् इति विश्वमूर्तिः॥७१७॥ **शेषपर्यङ्कशायिनोऽस्य महती मूर्तिरिति** महामूर्तिः॥७१८॥ **दीप्ता ज्ञानमयी मूर्तिर्यस्येति, स्वेच्छया गृहीता तैजसी मूर्तिर्दीप्ता अस्येति वा** दीप्तमूर्तिः॥७१९॥ **कर्मनिबन्धना मूर्तिरस्य न विद्यत इति** अमूर्तिमान्॥७२०॥ **अवतारेषु स्वेच्छया लोकानामुपकारिणीर्बह्वीर्मूर्तीर्भजत इति** अनेकमूर्तिः॥७२१॥

यद्यप्यनेकमूर्तित्वमस्य, तथाप्ययमीदृश एवेति न व्यज्यत इति अव्यक्तः॥७२२॥ **नानाविकल्पजा मूर्तयः संविदाकृतेः सन्तीति** शतमूर्तिः॥७२३॥ **विश्वादिमूर्तित्वं यतोऽत एव** शतानन:॥७२४॥90॥

एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।

लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः॥91॥

परमार्थतः सजातीयविजातीयस्वगतभेदविनिर्मुक्तत्वात् एकः; एकमेवाद्वितीयम्; (छा० उ० ६। २। १) **इति श्रुतेः**॥७२५॥ **मायया बहुरूपत्वात्** नैकः; 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृ० उ० २। ५। १९) **इति श्रुतेः**॥७२६॥ **सोमो यत्राभिसूयते सोऽध्वरः** सवः॥७२७॥ **कशब्दः सुखवाचकः, तेन स्तूयत इति** कः, 'कं ब्रह्म' (छा० उ० ४। १०। ५) **इति श्रुतेः**॥७२८॥ **सर्वपुरुषार्थरूपत्वाद् ब्रह्मैव विचार्यमिति ब्रह्म** किम्॥७२९॥ **यच्छब्देन स्वतःसिद्धवस्तूद्देशवाचिना ब्रह्म निर्दिश्यत इति ब्रह्म** यत्, 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तै० उ० ३। १) **इति श्रुतेः**॥७३०॥

तनोतीति ब्रह्म तत्, 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।' (गीता १७। २३) **इति भगवद्वचनात्**॥७३१॥ **पद्यते गम्यते मुमुक्षुभिरिति पदम्। यस्मादुत्कृष्टं नास्ति तद् अनुत्तमम्। सविशेषणमेकं नाम** पदमनुत्तमम् **इति**॥७३२॥ **आधारभूतेऽस्मिन् सकला लोका बध्यन्त इति लोकानां**

बन्धुः लोकबन्धुः; **लोकानां जनकत्वाज्जनकोपमो बन्धुर्नास्तीति वा, लोकानां बन्धुकृत्यं हिताहितोपदेशं श्रुतिस्मृतिलक्षणं कृतवानिति वा लोकबन्धुः॥७३३॥ लोकैर्नाथ्यते याच्यते लोकानुपतपति आशास्ते लोकानामीष्ट इति वा** लोकनाथः॥७३४॥ **मधुकुले जातत्वात्** माधवः॥७३५॥ **भक्तस्नेहवान्** भक्तवत्सलः॥७३६॥91॥

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः॥92॥

सुवर्णस्येव वर्णोऽस्येति सुवर्णवर्णः, 'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्'। (मु० उ० ३। १। ३) **इति श्रुतेः**॥७३७॥ **हेमेवाङ्गं वपुरस्येति** हेमाङ्गः, 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' (छा० उ० १। ६। ६) **इति श्रुतेः**॥७३८॥ **वराणि शोभनान्यङ्गान्यस्येति** वराङ्गः॥७३९॥ **चन्दनैराह्लादनैरङ्गदैः केयूरैर्भूषित इति** चन्दनाङ्गदी॥७४०॥ **धर्मत्राणाय वीरान् असुरमुख्यान् हन्तीति** वीरहा॥७४१॥ **समो नास्य विद्यते सर्वविलक्षणत्वादिति** विषमः, 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता ११। ४३)

इति भगवद्वचनात्॥७४२॥ **सर्वविशेषरहितत्वात् शून्यवत्** शून्यः॥७४३॥ **घृता विगलिता आशिषः प्रार्थना अस्येति** घृताशीः॥७४४॥ **न स्वरूपान्न सामर्थ्यान्न च ज्ञानादिकाद्गुणात् चलनं विद्यतेऽस्येति** अचलः॥७४५॥ **वायुरूपेण चलतीति** चलः॥७४६॥92॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः॥93॥

अनात्मवस्तुष्वात्माभिमानो नास्त्यस्य स्वच्छसंवेदनाकृतेरिति अमानी॥७४७॥ **स्वमायया सर्वेषामनात्मस्वात्माभिमानं ददाति, भक्तानां सत्करां मानं ददातीति, तत्त्वविदामनात्मस्वात्माभिमानं खण्डयतीति वा** मानदः॥७४८॥ **सर्वैर्माननीयः पूजनीयः सर्वेश्वरत्वादिति** मान्यः॥७४९॥ **चतुर्दशानां लोकानामीश्वरत्वात्** लोकस्वामी॥७५०॥ **त्रीन् लोकान् धारयतीति**

त्रिलोकधृक्।।७५१।। **शोभना मेधा प्रज्ञास्येति** सुमेधाः। 'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः' (पा० सू० ५।४।१२२) **इति समासान्तोऽसिच्**।।७५२।। **मेधेऽध्वरे जायत इति** मेधजः।।७५३।। **कृतार्थो** धन्यः।।७५४।। **सत्या अवितथा मेधा अस्येति** सत्यमेधाः।।७५५।। **अंशैरशेषैः शेषाद्यैरशेषां धरां धारयन्** धराधरः।।७५६।।93।।

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः।।94।।

तेजसामम्भसां सर्वदा आदित्यरूपेण वर्षणात् तेजोवृषः।।७५७।।

द्युतिमङ्गगतां कान्तिं धारयन् द्युतिधरः।।७५८।। **सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः** सर्वशस्त्रभृतां वरः।।७५९।। **भक्तैरुपहृतं पत्रपुष्पादिकं प्रगृह्णातीति** प्रग्रहः **धावतो विषयारण्ये दुर्दान्तेन्द्रियवाजिनः तत्प्रसादेन रश्मिनेव बध्नातीति वा प्रग्रहवत् प्रग्रहः**; 'रश्मौ च' (पा० सू०३।३।५३) **इति पाणिनिवचनात् प्रग्रहशब्दस्य साधुत्वम्**।।७६०।। **स्ववशेन सर्वं निगृह्णातीति** निग्रहः।।७६१।। **विगतमग्रमन्तो विनाशोऽस्येति** व्यग्रः; **भक्तानामभीष्टप्रदानेषु व्यग्र इति वा**।।७६२।।

चतुःशृङ्गो नैकशृङ्गः

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्याँ आविवेश।।'
(तै० आ० १०। १०। १७)

इति मन्त्रवर्णात्।।७६३।। **निगदेन मन्त्रेणाग्रे जायत इति निशब्दलोपं कृत्वा** गदाग्रजः; **यद्वा गदो नाम श्रीवासुदेवावरजः; तस्मादग्रे जायत इति** गदाग्रजः।।७६४।।94।।

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ।।95।।

चतस्रो मूर्तयो विराट्सूत्राव्याकृततुरीयात्मानोऽस्येति चतुर्मूर्तिः; **सिता**

रक्ता पीता कृष्णा चेति चतस्रो मूर्तयोऽस्येति वा।।७६५।। **चत्वारो बाहवोऽस्येति** चतुर्बाहुः **इति नाम वासुदेवे रूढम्**।।७६६।। 'शरीरपुरुषश्छन्दःपुरुषो वेदपुरुषो महापुरुषः' (ऐ० आ० ३। ४। २) **इति बह्वृचोपनिषदुक्ताश्चत्वारः पुरुषा व्यूहा अस्येति** चतुर्व्यूहः।।७६७।।

आश्रमाणां वर्णानां चतुर्णां यथोक्तकारिणां गतिः चतुर्गतिः।।७६८।। **रागद्वेषादिरहितत्वात् चतुर आत्मा मनोऽस्येति, मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यान्तःकरणचतुष्टयात्मकत्वाद् वा** चतुरात्मा।।७६९।। **धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयं भवत्युत्पद्यते अस्मादिति** चतुर्भावः।।७७०।।

यथावद् वेत्ति चतुर्णां वेदानामर्थमिति चतुर्वेदवित्।।७७१।। **एकः पादोऽस्येति** एकपात्; 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (पु० सू० ३) **इति श्रुतेः**।

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।' (गीता १०। ४२)

इति भगवद्वचनाच्च।।७७२।।95।।

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ।।96।।

संसारचक्रस्य सम्यगावर्तक इति समावर्तः।।७७३।। **सर्वत्र वर्तमानत्वात् न निवृत्त आत्मा कुतोऽपीति** अनिवृत्तात्मा **निवृत्त आत्मा मनो विषयेभ्योऽस्येति वा निवृत्तात्मा**।।७७४।। **जेतुं न शक्यत इति** दुर्जयः।।७७५।।

भयहेतुत्वादस्याज्ञां सूर्यादयो नातिक्रामन्तीति दुरतिक्रमः,

'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।'
(क० उ० २। ३। ३)

इति मन्त्रवर्णात्, 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' (क० उ० २। ३। २) **इति च**।।७७६।। **दुर्लभया भक्त्या लभ्यत्वात्** दुर्लभः,

'जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।।'

इति व्यासवचनात्, 'भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' (गीता ८। २२) इति भगवद्वचनाच्च।।७७७।। दुःखेन गम्यते ज्ञायत इति दुर्गमः।।७७८।। अन्तरायप्रतिहतैर्दुःखादवाप्यत इति दुर्गः।।७७९।। दुःखेनावास्यते चित्ते योगिभिः समाधाविति दुरावासः।।७८०।। दुरारिणो दानवादयस्तान् हन्तीति दुरारिहा।।७८१।।96।।

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः।।97।।

शोभनैरङ्गैर्ध्येयत्वात् शुभाङ्गः।।७८२।। लोकानां सारं सारङ्गवद् भृङ्गवद् गृह्णातीति लोकसारङ्गः, 'प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्' इति श्रुतेः; लोकसारः प्रणवः, तेन प्रतिपत्तव्य इति वा; पृषोदरादित्वात् साधुत्वम्।।७८३।।

शोभनस्तन्तुर्विस्तीर्णः प्रपञ्चोऽस्येति सुतन्तुः।।७८४।। तमेव तन्तुं वर्धयति छेदयतीति वा तन्तुवर्धनः।।७८५।। इन्द्रस्य कर्मेव कर्मास्येति इन्द्रकर्मा, ऐश्वर्यकर्मेत्यर्थः।।७८६।। महान्ति वियदादीनि भूतानि कर्माणि कार्याण्यस्येति महाकर्मा।।७८७।। कृतमेव सर्वं कृतार्थत्वात्, न कर्तव्यं किञ्चिदपि कर्मास्य विद्यत इति कृतकर्मा; धर्मात्मकं कर्म कृतवानिति वा।।७८८।। कृतो वेदात्मक आगमो येनेति कृतागमः 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदः' (बृ० उ० २।४।१०) इत्यादिश्रुतेः।।७८९।।97।।

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी।।98।।

उत्कृष्टं भवं जन्म स्वेच्छया भजति इति, उद्गतमपगतं जन्मास्य सर्वकारणत्वादिति वा उद्भवः।।७९०।। विश्वातिशायिसौभाग्यशालित्वात् सुन्दरः।।७९१।। सुष्ठु उनत्तीति सुन्दः, उन्दी क्लेदने इति धातोः पचाद्यच्; आर्द्रीभावस्य वाचकः करुणाकर इत्यर्थः; पृषोदरादित्वात् पररूपत्वम्।।७९२।। रत्नशब्देन शोभा लक्ष्यते, रत्नवत् सुन्दरा नाभिरस्येति रत्ननाभः।।७९३।। शोभनं लोचनं नयनं ज्ञानं वा अस्येति सुलोचनः।।७९४।। ब्रह्मादिभिः पूज्यतमैरपि अर्चनीयत्वात् अर्कः।।७९५।। वाजमन्नमर्थिनां

सनोति ददातीति वाजसनः।।७९६।। प्रलयाम्भसि शृङ्गवन्मत्स्यविशेषरूपः शृङ्गी; मत्वर्थीयोऽतिशायने इनिप्रत्ययः।।७९७।।

अरीन् अतिशयेन जयति, जयहेतुर्वा जयन्तः।।७९८।। सर्वविषयं ज्ञानमस्येति सर्ववित्; आभ्यन्तरान् रागादीन् बाह्यान् हिरण्याक्षादींश्च दुर्जयान् जेतुं शीलमस्येति जयी; तच्छीलाधिकारे 'जिदृक्षि' (पा० सू० ३। २। १५७) इत्यादिपाणिनीयवचनादिनिप्रत्ययः; सर्वविच्चासौ जयी चेति सर्वविज्जयी इत्येकं नाम।।७९९।।98।।

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः।।99।।

बिन्दवोऽवयवाः सुवर्णसदृशा अस्येति सुवर्णबिन्दुः, 'आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः' (छा० उ० १। ६। ६) इति श्रुतेः; शोभनो वर्णोऽक्षरं बिन्दुश्च यस्मिन्मन्त्रे तन्मन्त्रात्मा वा सुवर्णबिन्दुः।।८००।।

इति नाम्नामष्टमं शतं विवृतम्।

रागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च त्रिदशारिभिश्च न क्षोभ्यत इति अक्षोभ्यः।।८०१।। सर्वेषां वागीश्वराणां ब्रह्मादीनामपीश्वरः सर्ववागीश्वरेश्वरः।।८०२।। अवगाह्य तदानन्दं विश्रम्य सुखमासते योगिन इति महाह्रद इव महाह्रदः।।८०३।। गर्तवदस्य माया महती दुरत्ययेति महागर्तः, 'मम माया दुरत्यया' (गीता ७। १४) इति भगवद्वचनात्; यद्वा, गर्तशब्दो रथपर्यायो नैरुक्तैरुक्तः, तस्मान्महारथो महागर्तः; महारथत्वमस्य प्रसिद्धं भारतादिषु।।८०४।। कालत्रयानवच्छिन्नस्वरूपत्वात् महाभूतः।।८०५।। सर्वभूतानि अस्मिन्निधीयन्त इति निधिः महांश्चासौ निधिश्चेति महानिधिः।।८०६।।99।।

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।।100।।

कुं धरणिं भारावतरणं कुर्वन् मोदयतीति कुमुदः मुदिरत्रान्त-

र्भावितणिजर्थः।।८०७।। **कुन्दपुष्पतुल्यानि शुद्धानि फलानि राति ददाति, लात्यादत्ते इति वा** कुन्दरः **रलयोर्वृत्त्येकत्वस्मरणात्;**

'कुं धरां दारयामास हिरण्याक्षजिघांसया।
वाराहं रूपमास्थाय' **इति वा कुन्दरः**।।८०८।।

कुन्दोपमसुन्दराङ्गत्वात् स्वच्छतया स्फटिकनिर्मलः कुन्दः **कुं पृथ्वीं कश्यपायादादिति वा कुन्दः;**

सर्वपापविशुद्ध्यर्थं वाजिमेधेन चेष्टवान्।
तस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः।।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुन्धराम्।'

इति हरिवंशे (१। ४१। १६, १७) **कुं पृथ्वीं द्यति खण्डयतीति वा कुन्दः। कुशब्देन पृथ्वीश्वरा लक्ष्यन्ते;**

'निःक्षत्रियां यश्च चकार मेदिनीमनेकशो बाहुवनं तथाच्छिनत्।
यः कार्तवीर्यस्य स भार्गवोत्तमो ममास्तु माङ्गल्यविवृद्धये हरिः।।

इति विष्णुधर्मे।।८०९।। **पर्जन्यवदाध्यात्मिकादितापत्रयं शमयति, सर्वान् कामानभिवर्षतीति वा** पर्जन्यः।।८१०।। **स्मृतिमात्रेण पुनातीति** पावनः।।८११।। **इलति प्रेरणं करोतीति इलः, तद्रहितत्वात्** अनिलः; **इलति स्वपिति इत्यज्ञ इलः तद्विपरीतो नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वादिति वा; अथवा निलतेर्गहनार्थात् कप्रत्ययान्ताद्रूपम्; अगहनः अनिलः, भक्तेभ्यः सुलभ इति**।।८१२।। **स्वात्मामृतमश्नातीति** अमृताशः; **मथितममृतं सुरान् पाययित्वा स्वयं चाश्नातीति वा अमृताशः; अमृता अनश्वरफलत्वादाशा वाञ्छा अस्येति वा**।।८१३।। **मृतं मरणम्, तद्रहितं वपुरस्येति** अमृतवपुः।।८१४।। **सर्वं जानातीति** सर्वज्ञः। 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् (मु० उ० १। १। ९) **इति श्रुतेः**।।८१५।।

'सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्' (गीता १३। १३) **इति भगवद्वचनात्** सर्वतोमुखः।।८१६।।100।।

विश्रामः ।।४।।

*****

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः॥101॥

पुत्रपुष्पफलादिभिर्भक्तिमात्रसमर्पितैः सुखेन लभ्यत इति सुलभः।

'पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्येकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै कथं न क्रियते प्रयत्नः॥'

इति महाभारते॥८१७॥ **शोभनं व्रतयति भुङ्क्ते भोजनान्निवर्तत इति वा** सुव्रतः॥८१८॥ **अनन्याधीनसिद्धित्वात्** सिद्धः॥८१९॥ **सुरशत्रव एवास्य शत्रवः, तान् जयतीति** शत्रुजित्॥८२०॥ **सुरशत्रूणां तापनः** शत्रुतापनः॥८२१॥ **न्यक् अर्वाक् रोहति सर्वेषामुपरिवर्तत इति** न्यग्रोधः **पृषोदरादित्वाद् हकारस्य धकारादेशः; सर्वाणि भूतानि न्यक्कृत्य निजमायां वृणोति निरुणद्धीति वा**॥८२२॥ **अम्बरादुद्गतः कारणत्वेनेति** उदुम्बरः; **पृषोदरादित्वादेवोकारादेशः; यद्वा उदुम्बरमन्नाद्यम्; तेन तदात्मना विश्वं पोषयन् उदुम्बरः;** 'ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बरम्' **इति श्रुतेः। न्यग्रोधोदुम्बर इत्यत्र निसर्गलोपे सन्धिरार्षः**॥८२३॥ **श्वोऽपि न स्थातेति** अश्वत्थः। **पृषोदरादित्वादेव सकारस्य तकारादेशः;**

'ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।' (क० उ० २। ३। १)
इति श्रुतेः। 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।' (गीता १५।१)

इति स्मृतेश्च॥८२४॥ **चाणूरनामानमन्ध्रं निषूदितवानिति** चाणूरान्ध्रनिषूदनः॥८२५॥101॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद् भयनाशनः॥102॥

सहस्राणि अनन्तानि अर्चींषि यस्य स सहस्रार्चिः,

'दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥' (११। २२)

इति गीतावचनात्।।८२६।। **सप्त जिह्वा अस्य सन्तीति** सप्तजिह्वः,

'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वः।।'

(मु० उ० १। २। ४)

इति श्रुतेः।।८२७।। **सप्त एधांसि दीप्तयोऽस्येति** सप्तैधाः **अग्निः**, 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः' **इति मन्त्रवर्णात्**।।८२८।। **सप्त अश्वा वाहनान्यस्येति** सप्तवाहनः; **सप्तनामैकोऽश्वो वाहनमस्येति वा**, 'एकोऽश्वो वहति सप्तनामा' **इति श्रुतेः**।।८२९।। **मूर्तिर्घनरूपं धारणसमर्थं चराचरलक्षणम्**, 'ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत' **इति श्रुतेः; तद्रहित इति** अमूर्तिः; **अथवा देहसंस्थानलक्षणा मूर्च्छिताङ्गवयवा मूर्तिः, तद्रहित इति अमूर्तिः**।।८३०।। **अघं दुःखं पापं चास्य न विद्यत इति** अनघः।।८३१।। **प्रमात्रादिसाक्षित्वेन सर्वप्रमाणागोचरत्वात्** अचिन्त्यः; **अयमीदृश इति विश्वप्रपञ्चविलक्षणत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् वा अचिन्त्यः**।।८३२।।

असन्मार्गवर्तिनां भयं करोति, भक्तानां भयं कृन्तति कृणोतीति वा भयकृत्।।८३३।। **वर्णाश्रमाचारवतां भयं नाशयतीति** भयनाशनः;

'वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः।।'

(विष्णु० ३। ८। ९)

इति पराशरवचनात्।।८३४।।102।।

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान्।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ।।103।।

सौक्ष्म्यातिशयशालित्वाद् अणुः, 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' (मु० उ० ३। १। ९) **इति श्रुतेः**।।८३५।। **बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्म** बृहत्, 'महतो महीयान्' (क० उ० १। २। २०) **इति श्रुतेः**।।८३६।।

'अस्थूलम्' (बृ० उ० ३।८।८) **इत्यादिना द्रव्यत्वप्रतिषेधात्** कृशः।।८३७।। स्थूलः **इति उपचर्यते सर्वात्मत्वात्**।।८३८।। **सत्त्वरजस्तमसां सृष्टिस्थितिलयकर्मस्वधिष्ठातृत्वात्** गुणभृत्।।८३९।। **वस्तुतो गुणाभावात्** निर्गुणः, 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० उ० ६। ११) **इति श्रुतेः। शब्दादिगुणरहितत्वात् निरतिशयसूक्ष्मत्वात् नित्यशुद्ध- सर्वगतत्वादिना च प्रतिबन्धकं धर्मजातं तर्कतोऽपि यतो वक्तुं न शक्यम् अत एव** महान्।।८४०।। 'अनङ्गोऽशब्दोऽशरीरोऽस्पर्शश्च महाञ्छुचिः।' **इत्यापस्तम्बः।**

पृथिव्यादीनां धारकाणामपि धारकत्वान्न केनचिद् ध्रियत इति अधृतः।।८४२।। **यद्येवमयं केन धार्यत इत्याशङ्क्याहस्वेनैव आत्मना धार्यते इति** स्वधृतः, 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि।' (छा० उ० ७। २४। १) **इति श्रुतेः**।।८४३।। **शोभनं पद्मोदरतलताम्रम- भिरूपतममस्यास्यमिति** स्वास्यः; **वेदात्मको महान् शब्दराशिः तस्य मुखान्निर्गतः पुरुषार्थोपदेशार्थमिति वा स्वास्यः**, 'अस्य महतो भूतस्य' (बृ० उ० २। ४। १०) **इत्यादिश्रुतेः**।।८४४।। **अन्यस्य वंशिनो वंशाः पाश्चात्त्याः; अस्य वंशः प्रपञ्चः प्रागेव, न पाश्चात्त्य इति** प्राग्वंशः।।८४५।।

वंशं प्रपञ्चं वर्धयन् छेदयन् वा वंशवर्धनः।।८४६।।103।।

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः।

आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः।।104।।

अनन्तादिरूपेण भुवो भारं बिभ्रत् भारभृत्।।८४७।। **वेदादिभिरयमेव परत्वेन कथितः, 'सर्वैर्वेदैः कथित इति वा'** कथितः, 'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति' (क० उ० १।२।१५) 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १५।१५)

'वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते विष्णुः सर्वत्र गीयते।।'

(महा० श्रवण० ९३)

'सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।'

(क० उ० १। ३। ९)

इति श्रुतिस्मृत्यादिवचनेभ्यः। किं तदध्वनो विष्णोर्व्यापनशीलस्य परमं पदं सतत्त्वमित्याकाङ्क्षायाम् इन्द्रियादिभ्यः सर्वेभ्यः परत्वेन प्रतिपाद्यते 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः' (क० उ० १। ३। १०) **इत्यारभ्य,**

'पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः।'

(क० उ० १। ३। ११)

इत्यन्तेन यः कथितः स कथितः।।८४८।। **यगो ज्ञानम्, तेनैव गम्यत्वात्** योगी; **योगः समाधिः स हि स्वात्मनि सर्वदा समाधत्ते स्वमात्मानम्, तेन वा योगी**।।८४९।। **अन्ये योगिनो योगान्तरायैर्हन्यन्ते स्वरूपात् प्रमाद्यन्ति; अयं तु तद्रहितत्वात्तेषामीशः** योगीशः। **सर्वान् कामान् सदा ददातीति** सर्वकामदः, 'फलमत उपमत्तेः' (ब्र० सू० ३।२।३८) **इति व्यासेनाभिहितत्वात्**।।८५१।। **आश्रमवत् सर्वेषां संसारारण्ये भ्रमतां विश्रमस्थानत्वात्** आश्रमः।।८५२।। **अविवेकिनः सर्वान् सन्तापयतीति** श्रमणः।।८५३।। **क्षामाः क्षीणाः सर्वाः प्रजाः करोतीति** क्षामः; 'तत् करोति तदाचष्टे' **(चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि पचाद्यचि कृते सम्पन्नः क्षाम इति**।।८५४।। **शोभनानि पर्णानिच्छन्दांसि संसारतरुरूपिणोऽस्येति** सुपर्णः, 'छन्दांसि यस्य पर्णानि' (गीता १५। १) **इति भगवद्वचनात्**।।८५५।। **वायुर्वहति यद्भीत्या भूतानीति स** वायुवाहनः, 'भीषास्माद् वातः पवते' (तै० उ० २। ८) **इति श्रुतेः**।।८५६।।104।।

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः।
अपराजितः सर्वसहो नियन्तानियमोऽयमः।।105।।

श्रीमान् रामो महद्धनुर्धारयामासेति धनुर्धरः।।८५७।। **स एव दाशरथिर्धनुर्वेदं वेत्तीति** धनुर्वेदः।।८५८।। **दमनं दमयतां** दण्डः, 'दण्डो दमयतामस्मि' (गीता १०। ३८) **इति भगवद्वचनात्**।।८५९।। **वैवस्तनरेन्द्रा-**

दिरूपेण प्रजा दमयतीति दमयिता।।८६०।। दमः दम्येषु दण्डकार्यं फलम्, तच्च स एवेति दमः।।८६१।।

शत्रुभिर्न पराजितः इति अपराजितः।।८६२।। सर्वकर्मसु समर्थ इति, सर्वान् शत्रून् सहत इति वा सर्वसहः।।८६३।। सर्वान् स्वेषु स्वेषु कृत्येषु व्यवस्थापयतीति नियन्ता।।८६४।।

न नियमो नियतिस्तस्य विद्यत इति अनियमः, सर्वनियन्तुर्नि-यन्त्रन्तराभावात्।।८६५।। नास्य विद्यते यमो मृत्युरिति अयमः, अथवा, यमनियमौ योगाङ्गे तद्गम्यत्वात्स एव नियमः यमः।।८६६।।105।।

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः।

अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः।।106।।

शौर्यवीर्यादिकं सत्त्वमस्येति सत्त्ववान्।।८६७।। सत्त्वे गुणे प्राधान्येन स्थित इति सात्त्विकः।।८६८।। सत्सु साधुत्वात् सत्यः।।८६९।। सत्ये यथाभूतार्थकथने धर्मे च चोदनालक्षणे नियत इति सत्यधर्मपरायणः।।८७०।। अभिप्रेयते पुरुषार्थकाङ्क्षिभिः आभिमुख्येन प्रलयेऽस्मिन् प्रैति जगदिति वा अभिप्रायः।।८७१।। प्रियाणि इष्टान्यर्हतीति प्रियार्हः।

'यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता।।'
(दक्ष० ३। ३१)

इति स्मरणात्।।८७२।। स्वागतासनप्रशंसार्घ्यपाद्यस्तुतिनमस्कारादिभिः पूजासाधनैः पूजनीय इति अर्हः।।८७३।। न केवलं प्रियार्ह एव, किन्तु स्तुत्यादिभिर्भजतां प्रियं करोतीति प्रियकृत्।।८७४।। तेषामेव प्रीतिं वर्धयतीति प्रीतिवर्धनः।।८७५।।106।।

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग् विभुः।

रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः।।107।।

विहायसं गतिराश्रयोऽस्येति विहायसगतिः, **विष्णुपदम् आदित्यो वा**।।८७६।। **स्वत एव द्योतत इति** ज्योतिः, 'नारायणपरो ज्योतिरात्मा' (ना० उ० १३। १) **इति मन्त्रवर्णात्**।।८७७।। **शोभना रुचिर्दीप्तिरिच्छा वा अस्येति** सुरुचिः।।८७८।। **समस्तदेवतोद्देशेन प्रवृत्तेष्वपि कर्मसु हुतं भुङ्क्ते भुनक्तीति वा** हुतभुक्।।८७९।। **सर्वत्र वर्तमानत्वात्, त्रयाणां लोकानां प्रभुत्वाद् वा** विभुः।।८८०।। **रसानादत्त इति** रविः **आदित्यात्मा।** 'रसानाञ्च तथादानाद् रविरित्यभिधीयते।' (१। ३०। १६) **इति विष्णुधर्मोत्तरे**।।८८१।। **विविधं रोचत इति** विरोचनः।।८८२।। **सूते श्रियमिति सूर्योऽग्निर्वा** सूर्यः, **सूतेः सुवतेर्वा सूर्यशब्दो निपात्यते** 'राजसूयसूर्य०' (पा० सू० ३। १। ११४) **इति पाणिनिवचनात् सूर्यः**।।८८३।। **सर्वस्य जगतः प्रसविता** सविता; 'प्रजानां तु प्रसवनात् सवितेति निगद्यते' (१। ३०। १५) **इति विष्णुधर्मोत्तरे**।।८८४।।

रविर्लोचनं चक्षुरस्येति रविलोचनः, 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ' (मु० उ० २। १। ४) **इति श्रुतेः**।।८८५।।107।।

अनन्तो हुतभुग् भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः।।108।।

नित्यत्वात् सर्वगतत्वाद् देशकालपरिच्छेदाभावात् अनन्तः **शेषरूपो वा**।।८८६।। **हुतं भुनक्तीति** हुतभुक्।।८८७।। **प्रकृतिं भोग्याम् अचेतनां भुङ्क्ते इति, जगत् पालयतीति वा** भोक्ता।।८८८।। **भक्तानां सुखं मोक्षलक्षणं ददातीति** सुखदः। **असुखं द्यति खण्डयतीति वा** असुखदः।।८८९।। **धर्मगुप्तये असकृज्जायमानत्वात्** नैकजः।।८९०।। **अग्रे जायत इति** अग्रजः **हिरण्यगर्भः** 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (ऋ० सं० १०। १२१। १) **इत्यादिश्रुतेः**।।८९१।। **अवाप्तसर्वकामत्वाद-प्राप्तिहेत्वभावान्निर्वेदोऽस्य नास्तीति** अनिर्विण्णः।।८९२।। **सतः साधून् आभिमुख्येन मृष्यते क्षमत इति** सदामर्षी।।८९३।। **तमनाधारमा-**

धारमधिष्ठाय त्रयो लोकास्तिष्ठन्ति इति लोकाधिष्ठानं **ब्रह्म**।।८९४।। **अद्भुतत्वात्** अद्भुतः।

'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।'
(क० उ० १। २। ७)

इति श्रुतेः। 'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्' (गीता २। २९) **इति भगवद्वचनाच्च। स्वरूपशक्तिव्यापारकार्यैरद्भुतत्वाद् वा अद्भुतः**।।८९५।।108।।

षष्ठाह्निकम्।।६।।

*****

सनात् सनातनतमः कपिलः कपिरप्ययः।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत् स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः।।109।।

सनात् **इति निपातश्चिरार्थवचनः। कालश्च परस्यैव विकल्पना कापि।**

'परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथापरम्।।'
(१। २। १५)

इति विष्णुपुराणे।।८९६।। **सर्वकारणत्वाद् विरिञ्च्यादीनामपि सनातनानामतिशयेन सनातनत्वात्** सनातनतमः।।८९७।। **बडवानलस्य कपिलो वर्ण इति तद्रूपी** कपिलः।।८९८।। **कं जलं रश्मिभिः पिबन्** कपिः **सूर्यः; कपिर्वराहो वा,** 'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च' **इति वचनात्**।।८९९।।

प्रलये अस्मिन्नपियन्ति जगन्तीति अप्ययः।।९००।।

इति नाम्नां नवमं शतं विवृतम्।

भक्तानां स्वस्ति मङ्गलं ददातीति स्वस्तिदः।।९०१।। **तदेव करोतीति**

स्वस्तिकृत्॥९०२॥ **मङ्गलस्वरूपमात्मीयं परमानन्दलक्षणं** स्वस्ति॥९०३॥ **तदेव भुङ्क्त इति** स्वस्तिभुक्; **भक्तानां मङ्गलं स्वस्ति भुनक्तीति वा स्वस्तिभुक्**॥९०४॥ **स्वस्तिरूपेण दक्षते वर्धते, स्वस्ति दातुं समर्थ इति वा** स्वस्तिदक्षिणः। **अथवा दक्षिणशब्द आशुकारिणि वर्तते; शीघ्रं स्वस्ति दातुमयमेव समर्थ इति, यस्य स्मरणादेव सिध्यन्ति सर्वसिद्धयः,** 'स्मृतेः सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।

पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥' (ब्रह्म० ८३। १७)

'स्मरणादेव कृष्णस्य पापसङ्घातपञ्जरम्।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा॥'

इत्यादिवचनेभ्यः॥९०५॥109॥

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः॥110॥

कर्म रौद्रम्, रागश्च रौद्रः, कोपश्च रौद्रः; यस्य रौद्रत्रयं नास्ति अवाप्तसर्वकामत्वेन रागद्वेषादेरभावात् स अरौद्रः॥९०६॥ **शेषरूपभाक्** कुण्डली **सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलधारणाद् वा; यद्वा सांख्ययोगात्मके कुण्डले मकराकारे अस्य स्त इति कुण्डली**॥९०७॥

समस्तलोकरक्षार्थं मनस्तत्त्वात्मकं सुदर्शनाख्यं चक्रं धत्त इति चक्री,

'चलस्वरूपमत्यन्तजवेनान्तरितानिलम्।

चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम्॥' (१। २२। ७१)

इति विष्णुपुराणवचनात्॥९०८॥ **विक्रमः पादविक्षेपः, शौर्यं वा; द्वयं चाशेषपुरुषेभ्यो विलक्षणमस्येति** विक्रमी॥९०९॥

श्रुतिस्मृतिलक्षणमूर्जितं शासनमस्येति ऊर्जितशासनः।

'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥'

इति भगवद्वचनात्।।९१०।। शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनामसम्भवात् शब्देन वक्तुमशक्यत्वात् शब्दातिगः, 'यतो वाचो निर्वन्ते अप्राप्य मनसा सह।' (तै० उ० २। ४)

'न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम्।' (वि० पु० १। १७। २२)

इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः।।९११।। सर्वे वेदाः तात्पर्येण तमेव वदन्तीति शब्दसहः; 'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति' (क० उ० १। २। १५) इति श्रुतेः, 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १५। १५) इति स्मृतेश्च।।९१२।। तापत्रयाभितप्तानां विश्रामस्थानत्वात् शिशिरः।।९१३।। संसारिणामात्मा शर्वरीव शर्वरी; ज्ञानिनां पुनः संसारः शर्वरी; तामुभयेषां करोतीति शर्वरीकरः;

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।'
(गीता २। ६९)

इति भगवद्वचनात्।।९१४।।110।।

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः।।111।।

क्रौर्यं नाम मनोधर्मः प्रकोपजः आन्तर सन्ताप साभिनिवेशः, अवाप्तसमस्तकामत्वात् कामाभावादेव कोपाभावः; तस्मात् क्रौर्यमस्य नास्तीति अक्रूरः।।९१५।। कर्मणा मनसा वाचा वपुषा च शोभनत्वात् पेशलः।।९१६।। प्रवृद्धः शक्तः शीघ्रकारी च दक्षः त्रयं चैतत् परस्मिन्नियतमिति दक्षः।।९१७।। दक्षिणशब्दस्यापि दक्ष एवार्थः; पुनरुक्तिदोषो नास्ति, शब्दभेदात्; अथवा दक्षते गच्छति, हिनस्तीति वा दक्षिणः, 'दक्ष गतिहिंसनयोः' इति धातुपाठात्।।९१८।। क्षमावतां योगिनां च पृथिव्यादीनां भारधारकाणां च श्रेष्ठ इति क्षमिणां वरः। 'क्षमया पृथिवीसमः' (वा० रा० १।१।१८) इति वाल्मीकिवचनात्।

ब्रह्माण्डमखिलं वहन् पृथिवीव भारेण नार्दित इति पृथिव्या अपि वरो वा क्षमिणः शक्ताः, अयं तु सर्वशक्तिमत्त्वात् सकलाः क्रियाः कर्तुं क्षमत इति वा क्षमिणां वरः॥९१९॥ निरस्तातिशयं ज्ञानं सर्वदा सर्वगोचरमस्यास्ति नेतरेषामिति विद्वत्तमः॥९२०॥ वीतं विगतं भयं सांसारिकं संसारलक्षणं वा अस्येति वीतभयः सर्वेश्वरत्वान्नित्य-मुक्तत्वाच्च॥९२१॥ पुण्यं पुण्यकरं श्रवणं कीर्तनं चास्येति पुण्यश्रवणकीर्तनः,

'य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।
नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित् सोऽमुत्रेह च मानवः॥'
(वि० स० १२२)

इति श्रवणादिफलवचनात्॥९२२॥111॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः॥112॥

संसारसागरादुत्तारयतीति उत्तारणः॥९२३॥ दुष्कृतीः पापसंज्ञिता हन्तीति दुष्कृतिहा, ये पापकारिणस्तान् हन्तीति वा दुष्कृतिहा॥९२४॥ स्मरणादि कुर्वतां सर्वेषां पुण्यं करोतीति, सर्वेषां श्रुतिस्मृतिलक्षणया वाचा पुण्यमाचष्ट इति वा पुण्यः॥९२५॥ भाविनोऽनर्थस्य सूचकान् दुःस्वप्नान् नाशयति ध्यातः स्तुतः कीर्तितः पूजितश्चेति दुःस्वप्ननाशनः॥९२६॥ विविधाः संसारिणां गतिर्मुक्तिप्रदानेन हन्तीति वीरहा॥९२७॥ सत्त्वं गुणमधिष्ठाय जगत्त्रयं रक्षम् रक्षणः नन्द्यादित्वात् कर्तरि ल्युः॥९२८॥ सन्मार्गवर्तिनः सन्तः; तद्रूपेण विद्याविनयवृद्धये स एव वर्तत इति सन्तः॥९२९॥ सर्वाः प्रजाः प्राणरूपेण जीवयन् जीवनः॥९३०॥ परितः सर्वतो विश्वं व्याप्यावस्थित इति पर्यवस्थितः॥९३१॥112॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः।
चतुरश्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः॥113॥

अनन्तानि रूपाण्यस्य विश्वप्रपञ्चरूपेण स्थितस्येति अनन्तरूप:।।९३२।।

अनन्ता अपरिमिता श्री: परा शक्तिरस्येति अनन्तश्री:, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वे० उ० ६। ८) **इति श्रुते:**।।९३३।। **मन्यु: क्रोधो जितो येन स** जितमन्यु:।।९३४।। **भयं संसारजं पुंसामपघ्नन्** भयापह:।।९३५।। **न्यायसमवेत:** चतुरश्र:, **पुंसां कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छतीति**।।९३६।।

आत्मा स्वरूपं चित्तं वा गभीरं परिच्छेत्तुमशक्यमस्येति गभीरात्मा।।९३७।। **विविधानि फलानि अधिकारिभ्यो विशेषेण दिशतीति** विदिश:।।९३८।।

विविधामाज्ञां शक्रादीनां कुर्वन् व्यादिश:।।९३९।। **समस्तानां कर्मणां फलानि दिशन् वेदात्मना** दिश:।।९४०।।113।।

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मी: सुवीरो रुचिराङ्गद:।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रम:।।114।।

आदि: कारणमस्य न विद्यत इति अनादि:, **सर्वकारणत्वात्**।।९४१।।

भूराधार:, सर्वभूताश्रयत्वेन प्रसिद्धाया भूम्या: भुवोऽपि भूरिति भूर्भुव:।।९४२।। अथवा, **न केवलमसौ भू: भुव:, लक्ष्मी: शोभा चेति भुवो** लक्ष्मी: **अथवा, भू: भूर्लोक:; आत्मविद्या,** 'आत्मविद्या च देवि त्वम्' **इति श्रीस्तुतौ। भूम्यन्तरिक्षयो: शोभेति वा भूर्भुवो लक्ष्मी:**।।९४३।।

शोभना विविधा ईरा गतयो यस्य स सुवीर:; **शोभनं विविधम् ईर्ते इति वा सुवीर:**।।९४४।। **रुचिरे कल्याणे अङ्गदे अस्येति** रुचिराङ्गद:।।९४५।। **जन्तून् जनयन्** जनन:; **ल्युड्विधौ बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट्प्रत्यय: प्रयोगवचनादिवत्**।।९४६।। **जनस्य जनिमतो जन्म उद्भव: तस्यादिर्मूलकारणमिति** जनजन्मादि:।।९४७।। **भयहेतुत्वाद्** भीम:, 'भीमादयोऽपादाने' (पा० सू० ३। ४। ७४) **इति निपातनात्,** 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' **इति श्रुते:**।।९४८।। **असुरादीनां भयहेतु: पराक्रमोऽस्यावतारेष्विति** भीमपराक्रम:।।९४९।।114।।

आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः।

ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः॥115॥

पृथिव्यादीनां पञ्चभूतानामाधाराणामाधारत्वात् आधारनिलयः॥९५०॥

स्वात्मना धृतस्यास्यान्यो धाता नास्तीति अधाता; 'नद्यृतश्च' (पा० सू० ५। ४। १५३) **इति** 'समासान्तविधिरनित्यः' (परिभाषेन्दुशेखरे ८६) **इति कप्प्रत्ययाभावः। संहारसमये सर्वाः प्रजा धयति पिबतीति वा** धाता; **धेट् पाने इति धातुः**॥९५१॥ **मुकुलात्मना स्थितानां पुष्पाणां हासवत् प्रपञ्चरूपेण विकासोऽस्येति** पुष्पहासः॥९५२॥ **नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात् प्रकर्षेण जागर्तीति** प्रजागरः॥९५३॥ **सर्वेषामुपरि तिष्ठन्** ऊर्ध्वगः॥९५४॥ **सतां कर्माणि सत्पथास्तानाचरत्येष इति** सत्पथाचारः॥॥९५५॥ **मृतान् परिक्षिप्प्रभृतीन् जीवयन्** प्राणदः॥९५६॥ **प्रणवो नाम परमात्मनो वाचक ओङ्कारः; तदभेदोपचारेणायं** प्रणवः॥९५७॥ **पणतिर्व्यवहारार्थः; तं कुर्वन्** पणः,

'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते॥'

(तै० आ० उ० १। २। ७)

इति श्रुतेः। पुण्यानि सर्वाणि कर्माणि पणं सङ्गृह्याधिकारिभ्यः तत्फलं प्रयच्छतीति वा लक्षणया पणः॥९५८॥115॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत् प्राणजीवनः।

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः॥116॥

प्रमितिः संवित् स्वयंप्रभा प्रमाणम्, 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐ० उ० ३।५।३) **इति श्रुतेः**

'ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः।
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥'

(१। २। ६)

इति विष्णुपुराणे।।९५९।।

प्राणा इन्द्रियाणि यत्र जीवे निलीयन्ते तत्परतन्त्रत्वात्, देहस्य धारकाः प्राणापानादयो वा तस्मिन्निलीयन्ते; प्राणितीति प्राणो जीवः परे पुंसि निलीयत इति वा प्राणान् जीवांश्च संहरन्निति वा प्राणनिलयः।।९६०।। **पोषयन्नन्नरूपेण प्राणान्** प्राणभृत्।।९६१।। **प्राणिनो जीवयन् प्राणाख्यैः पवनैः** प्राणजीवनः,

'न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।।'
(क० उ० २।२।५)

इति मन्त्रवर्णात्।।९६२।। तत्त्वं **तथ्यममृतं सत्यं परमार्थतः सतत्त्वमित्येते एकार्थवाचिनः परमार्थसतो ब्रह्मणो वाचकाः शब्दाः**।।९६३।।

तत्तवं स्वरूपं यथावद् वेत्तीति तत्त्ववित्।।९६४।। **एकश्चासावात्मा चेति** एकात्मा, 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' (ऐ० उ० १।१) **इति श्रुतेः**,

'यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते।'

इति स्मृतेश्च।।९६५।। **जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति इति षड्भावविकारानतीत्य गच्छतीति** जन्ममृत्युजरातिगः, 'न जायते म्रियते वा विपश्चित् (क० उ० १।२।१८) **इति मन्त्रवर्णात्**।।९६६।।116।।

भुर्भुवः स्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः।।117।।

भूर्भुवःस्वःसमाख्यानि त्रीणि व्याहृतिरूपाणि शुक्राणि त्रयीसाराणि बह्वृचा आहुः; तैर्होमादिना जगत्त्रयं तरति, प्लवते वेति भूर्भुवःस्वस्तरुः,

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥'
(३। ७६)

इति मनुवचनात्; अथवा भूर्भुवःस्वःसमाख्यलोकत्रयसंसारवृक्षो भूर्भुवःस्वस्तरुः; भूर्भुवःस्वराख्यं लोकत्रयं वृक्षवद् व्याप्य तिष्ठतीति वा भूर्भुवःस्वस्तरुः॥९६७॥ **संसारसागरं तारयन्** तारः; **प्रणवो वा**॥९६८॥ **सर्वस्य लोकस्य जनक इति** सविता॥९६९॥ **पितामहस्य ब्रह्मणोऽपि पितेति** प्रपितामहः॥९७०॥ **यज्ञात्मना** यज्ञः॥९७१॥

यज्ञानां पाता, स्वामी वा यज्ञपतिः, 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।' (गीता ९। २४) **इति भगवद्वचनात्**॥९७२॥ **यजमानात्मना तिष्ठन्** यज्वा॥९७३॥ **यज्ञा अङ्गान्यस्येति वराहमूर्तिः** यज्ञाङ्गः;

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुहस्तश्चितीमुखः।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः॥
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्॥
धर्मसत्यमयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्क्रियः।
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्महाभुजः॥
उद्गात्रान्त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफलाः।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग् विक्रमः सोमशोणितः॥
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः॥
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्।
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः॥
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः।
छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥'
(३। ३४। ३४-४१)

इति हरिवंशे।।९७४।।

फलहेतुभूतान् यज्ञानं वाहयतीति यज्ञवाहन:।।९७५।।117।।

यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधन: ।

यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ।।118।।

यज्ञं बिभर्ति पातीति वा यज्ञभृत्।।९७६।। जगदादौ तदन्ते च यज्ञं करोति, कृन्ततीति वा यज्ञकृत्।।९७७।। यज्ञानां तत्समाराधनात्मनां शेषीति यज्ञी।।९७८।। यज्ञं भुङ्क्ते, भुनक्तीति वा यज्ञभुक्।।९७९।। यज्ञा: साधनं तत्प्राप्ताविति यज्ञसाधन:।।९८०।। यज्ञस्यान्तं फलप्राप्तिं कुर्वन् यज्ञान्तकृत्। वैष्णवऋक्छंसनेन पूर्णाहुत्या पूर्णं कृत्वा यज्ञसमाप्तिं करोतीति वा यज्ञान्तकृत्।।९८१।। यज्ञानां गुह्यं ज्ञानयज्ञ:, फलाभिसन्धिरहितो वा यज्ञ:; तदभेदोपचाराद् ब्रह्म यज्ञगुह्यम्।।९८२।। अद्यते भूतै: अत्ति च भूतानिति अन्नम्।।९८३।। अन्नमत्तीति अन्नाद:। सर्वं जगदन्नादिरूपेण भोक्तृभोग्यात्मकमेवेति दर्शयितुमेवकार:; 'च' शब्द: सर्वनाम्नामेकस्मिन् परस्मिन् पुंसि समुच्चित्य वृत्तिं दर्शयितुम्।।९८४।।118।।

आत्मयोनि: स्वयंजातो वैखान: सामगायन:।

देवकीनन्दन: स्रष्टा क्षितीश: पापनाशन:।।119।।

आत्मैव योनिरुपादानकारणं नान्यदिति आत्मयोनि:।।९८५।। निमित्तकारणमपि स एवेति दर्शयितुं स्वयंजात: इति 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (ब्र० सू० १।४।२३) इत्यत्र स्थापितमुभयकारणत्वं हरे:।।९८६।। विशेषेण खननात् वैखान:; धरणीं विशेषेण खनित्वा पातालवासिनं हिरण्याक्षं वाराहं रूपमास्थाय जघानेति पुराणे प्रसिद्धम्।।९८७।। सामानि गायतीति सामगायन:।।९८८।। देवक्या: सुतो देवकीनन्दन:।

'ज्योतींषि शुक्राणि च यानि लोके त्रयो लोका लोकपालास्त्रयी च।
त्रयोऽग्नयश्चाहुतयश्च पञ्च सर्वे देवा देवकीपुत्र एव।।'

इति महाभारते (अनु० १५८। ३१)॥९८९॥ स्रष्टा **सर्वलोकस्य**॥९९०॥ **क्षितेर्भूमेरीशः** क्षितीशः **दशरथात्मजः**॥९९१॥

कीर्तितः पूजितो ध्यातः स्मृतः पापराशिं नाशयन् पापनाशनः,

'पक्षोपवासाद् यत् पापं पुरुषस्य प्रणश्यति।
प्राणायामशतेनैव तत् पापं नश्यते नृणाम्॥
प्राणायामसहस्रेण यत् पापं नश्यते नृणाम्।
क्षणमात्रेण तत् पापं हरेर्ध्यानात् प्रणश्यति॥'

इति वृद्धशातातपे॥९९२॥119॥

शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः॥
सर्वप्रहरणायुध ॐ नमः॥120॥

पाञ्चजन्याख्यं भूताद्यहङ्कारात्मकं शङ्खं बिभ्रत् शङ्खभृत्॥९९३॥

विद्यामयो नन्दकाख्योऽसिरस्येति नन्दकी॥९९४॥ **मनस्तत्त्वात्मकं सुदर्शनाख्यं चक्रमस्यास्तीति; संसाराचक्रमस्याज्ञया परिवर्तत इति वा** चक्री॥९९५॥ **इन्द्रियाद्यहङ्कारात्मकं शार्ङ्गं नाम धनुरस्यास्तीति** शार्ङ्गधन्वा 'धनुषश्च' (पा० सू० ५। ४। १३२) **इति अनङ्समासान्तः**॥९९६॥

बुद्धितत्त्वात्मिकां कौमोदकीं नाम गदां वहन् गदाधरः॥९९७॥

रथाङ्गं चक्रमस्य पाणौ स्थितमिति रथाङ्गपाणिः॥९९८॥

अतएव अशक्यक्षोभण इति अक्षोभ्यः॥९९९॥

केवलम् एतावन्त्यायुधान्यस्येति न नियम्यते, अपि तु सर्वाण्येव प्रहरणान्यायुधान्यस्येति सर्वप्रहरणायुधः, **आयुधत्वेनाप्रसिद्धान्यपि करजादीन्यस्यायुधानि भवन्तीति। अन्ते सर्वप्रहरणायुध इति वचनं सत्यसङ्कल्पत्वेन सर्वेश्वरत्वं दर्शयितुम्,** 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ० ६) **इति श्रुतेः**॥१०००॥

द्विर्वचनं समाप्तिं द्योतयति।

ॐकारश्च मङ्गलार्थ,

'ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।।'
(बृ० ना० १। ५१। १०)

इति वचनात्। अन्ते 'नमः' इत्युक्त्वा परिचरणं कृतवान्, 'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम' (ई० उ० १८) **इति मन्त्रवर्णात्।**

'धन्यं तदेव लग्नं तन्नक्षत्रं तदेव पुण्यमहः।
करणस्य च सा सिद्धिर्यत्र हरिः प्राङ् नमस्क्रियते।।'

इति च। प्रागित्युपलक्षणम्, अन्तेऽपि नमस्कारस्य शिष्टैराचरणात्। नमस्कारफलं प्रागेव दर्शितम्-

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।'
(महा० शा० ४७। ९१)

'अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्।।'
(महा० शा० ४७। ९०)

'लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभावमीषत् प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम्।
जन्मान्तरप्रलयकल्पसहस्रजातमाशु प्रशान्तिमुपयाति नरस्य पापम्।।'
॥120॥

इति नाम्नां दशमं शतं विवृतम्।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥121॥

इतीदमित्यनेन नामसहस्रमन्यूनानतिरिक्तमुक्तमिति दर्शयति

दिव्यानामप्राकृतानां नाम्नां सहस्रं प्रकीर्तितमिति वदता प्रकारान्तरेणापि संख्योपपत्तिर्दर्शिता।

प्रक्रमे 'किं जपन् मुच्यते जन्तुः' **इति जपशब्दोपादानात् कीर्तयेत्, इत्यनेनापि त्रिविधजपो लक्ष्यते; उच्चोपांशुमानसलक्षणस्त्रिविधो जपः** ॥121॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।

नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित् सोऽमुत्रेह च मानवः॥122॥

य इदं शृणुयात् **इत्यादिः स्पष्टार्थः परलोकप्राप्तस्यापि ययातिनहुषादिवदशुभप्राप्तभावं सूचयितुम्** अमुत्र **इत्युक्तम्**॥122॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।

वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥123॥

वेदान्तानामुपनिषदामर्थं ब्रह्म गच्छत्यवगच्छतीति वेदान्तगः।

'किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।'

(वि० स० ३)

इति वचनात् जपकर्मणा साक्षान्मुक्तिशङ्कायां कर्मणां साक्षान्मुक्तिहेतुत्वं नास्ति, ज्ञानेनैव मोक्ष इति दर्शयितुम् 'वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्' **इत्युक्तम्। कर्मणां त्वन्तःकरणशुद्धिद्वारेण मोक्षहेतुत्वम्।**

'कषायपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।

कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तते॥'

'नित्यं ज्ञानं समासाद्य नरो बन्धात् प्रमुच्यते।'

'धर्मात् सुखं च ज्ञानं च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते॥'

'योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥'

(गीता ५। ११)

'कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्ययैव विमुच्यते।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः।।'
(ब्रह्म० १२९। ७)

'यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद् वेदाभ्यासे च यत्नवान्।।'
(मनु० १२। ९२)

'तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते।'
'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि।।'
(गरुड० १। २३७। ६)

इत्यादिस्मृतिभ्यः, 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्रह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन' (बृ० उ० ४। ४। २२) 'येन केन च यजेतापि वा दर्विहोमेनानुपहतमना एव भवति' **इत्यादिश्रुतिभ्यः।**

ज्ञानादेव मोक्षो भवति। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते तेन मुच्यते।।'

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' (तै० उ० २। १) 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० उ० ७। १। ३) 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (मु०उ० ३।२।९) 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' (बृ० उ० ४। ४। ६)

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'
(श्वे० उ० ६। १५)

'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।'
(तै० उ० २। ४)

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'
(के० उ० २। ५)

'यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।'
(श्वे० उ० ६। २०)

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।।'
(कै० उ० १।३)

'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।'
(कै० उ० १।४)

इत्यादि श्रुतिभ्यः

शूद्रः सुखमवाप्नुयात् **श्रवणेनैव, न तु जपयज्ञेन,** 'तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः' (तै० सं० ७। १। १। ६) **इति श्रुतेः।**

'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।'

इति महाभारते (शा० ३२७। ४९) **श्रवणमनुज्ञायते।** 'सुगतिमिया-च्छ्रवणाच्च शूद्रयोनिः' **इति हरिवंशे। यः शूद्रः शृणुयात् स सुखमवाप्नुयाद् इति व्यवहितेन सम्बन्धः; त्रैवर्णिकानां कीर्तयेदित्यनेन।।123।।**

धर्मार्थी प्राप्नुयाद् धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात् कामी प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम्।।124।।

चक्षुरादीनामात्मयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यात् प्रवृत्तिः कामः। प्रजायत इति प्रजा सन्ततिः।।124।।

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत्।।125।।

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥126॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः ॥127॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥128॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥129॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥130॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥131॥

इमं स्तवमधीयान् श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥132॥

भक्तिमानित्यादिना भक्तिमतः शुचेः सततमुद्युक्तस्यैकाग्रचित्तस्य श्रद्धालोर्विशिष्टाधिकारिणः फलविशेषं दर्शयति।

श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिः। भक्तिर्भजनं तात्पर्यम्। आत्मनः सुखम् आत्मसुखम्। तेन च क्षान्त्यादिभिश्च युज्यते॥132॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥133॥

न क्रोधो न लोभो नाशुभा मतिः इति अकारानुबन्धरहितेन नकारेण समस्तं पदत्रयम्; क्रोधादयो न भवन्ति मात्सर्यं च न भवतीत्यर्थः॥133॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥134॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद् वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥135॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥136॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥137॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥138॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥139॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीँल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥140॥

'द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा' इत्यादिना स्तुत्यस्य वासुदेवस्य माहात्म्यकथने-नोक्तानां फलानां प्राप्तिवचनं यथार्थकथनं नार्थवाद इति दर्शयति

सर्वागमानामाचारः, इत्यनेनावान्तरवाक्येन सर्वधर्माणामाचारवत एवाधिकार इति दर्शयति।140।।

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत् पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ।।141।।

'इमं स्तवम्' इत्यादिना सहस्रशाखाज्ञेन सर्वज्ञेन भगवता कृष्णद्वैपायनेन साक्षान्नारायणेन कृतमिति सर्वैरेव अर्थिभिः सादरं पठितव्यं सर्वफलसिद्धय इति दर्शयति।141।।

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ।।142।।

'विश्वेश्वरम्' इत्यादिना विश्वेश्वरोपासनादेव स्तोतारस्ते धन्याः कृतार्थाः कृतकृत्या इति दर्शयति।

'प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः।।'

'आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेद् विश्वकर्तारं को न मुच्येत बन्धनात्।।'
(गरुड० २३०।५०)

इति व्यासवचनम्।142।।

इति पञ्चमविश्रामः।।५।।

इति सप्तमाह्निकम्।।७।।

सहस्रनामसम्बन्धिव्याख्या सर्वसुखावहा।
श्रुतिस्मृतिन्यायमूला रचिता हरिपादयोः।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रभाष्यं सम्पूर्णम्।।

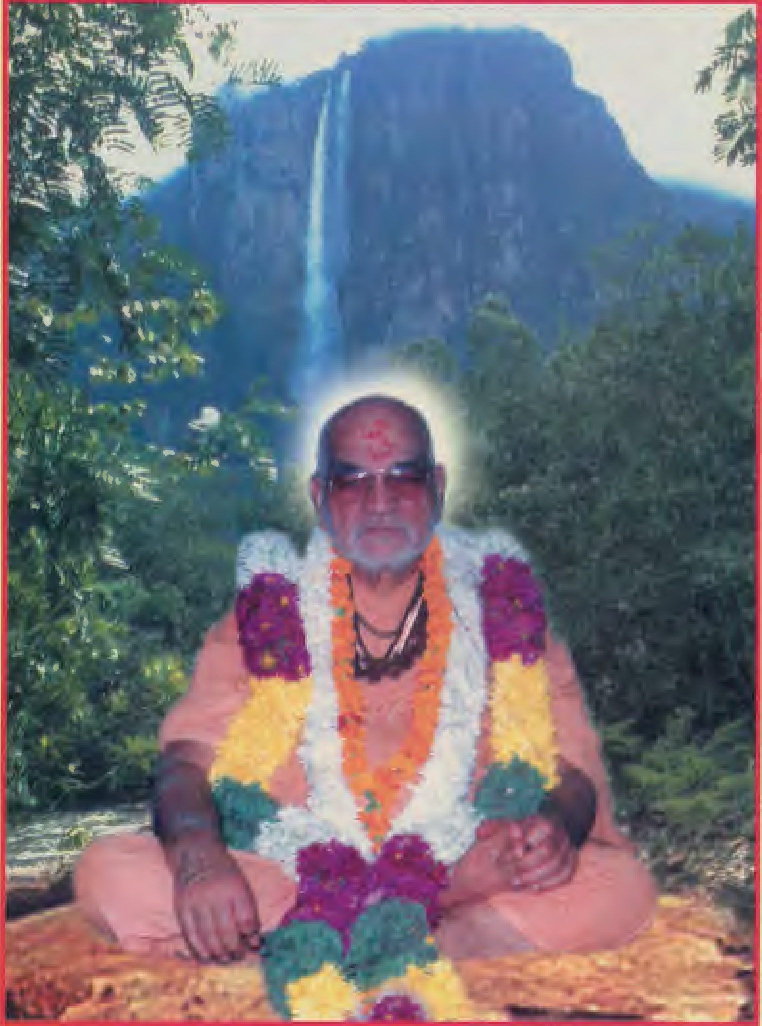


अनन्त श्री स्वामी जीवन्मुक्त गिरि जी महाराज (गिरि माँ)
संस्थापिका कैलास आश्रम, रोहतक



कैलास आश्रम माडल टाऊन, रोहतक (हरियाणा)

गुरुजन-शताब्दी-त्रिवेणी-सङ्गम-प्रसङ्गे प्रकाशितम्



श्रीकैलासदशमपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर
अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरिजी महाराज वेदान्तसर्वदर्शनाचार्य